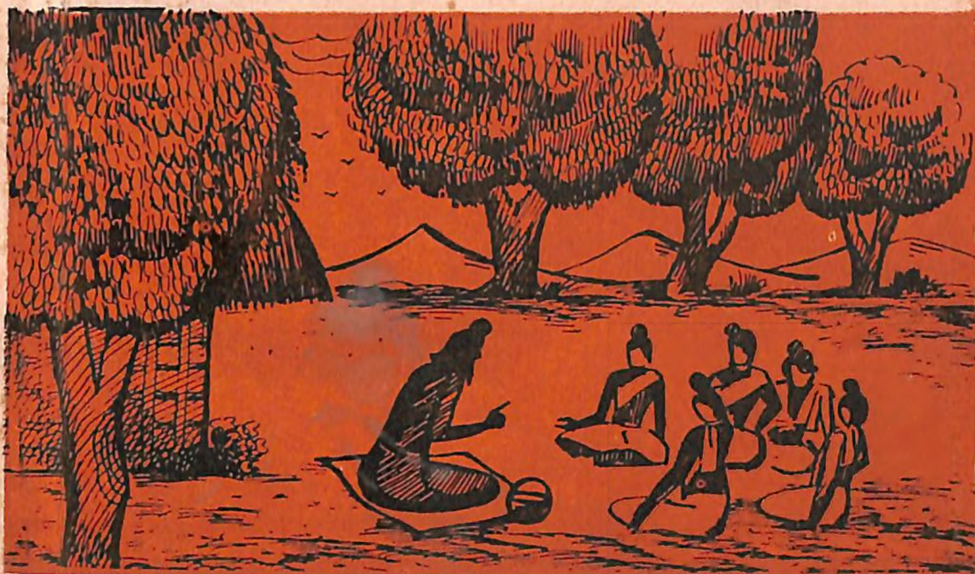
ईश्वरगीता



प्रकाशक

श्री पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद, दतिया (म.प्र.)

ॐ तत्सत्

साम्बसदाशिवाय नमः

ईश्वर-गीता

(भावार्थ दीपिका व्याख्या सहित)



टीकाकार

श्री स्वामीजी महाराज

श्री पीताम्बरा पीठ, वनखण्डेश्वर,

दतिया

प्रकाशक :
श्री पीताम्बरा पीठ,
दतिया

द्वितीय संस्करण १९८२
मूल्य : ६ रुपया

मुद्रक :
शिवशक्ति प्रेस प्रा. लि.
नागपुर–९



ब्रह्मलीन

श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वर राष्ट्रगुरु परमपूज्य श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज, वनखण्डेश्वर, दतिया (म०प्र०)

* ॐ तत्सत् *

ईश्वर-गीता

(महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास प्रणीत कूर्म पुराण के अन्तर्गत श्री ईश्वरगीता की सरल सुन्दर भावार्थ सहित व्याख्या)

समर्पणम्

गीताशास्त्रं हि सर्वेषां, भवाम्बुधितितीर्षताम् ।
नौरिव साधनं श्रेष्ठं माहेश्वरं शिवोदितम् ॥१॥

भावार्थदीपिकां व्याख्यां, कृत्वा शैवार्थबोधिनीम् ।
अर्पितं शूलिने सम्यक् जनसङ्घस्वरूपिणे ॥२॥

तुष्यत्वनेन देवेशः पशुपाशविमोचकः ।
कर्ता शिवः स्वयं साक्षात् कर्ताहं यन्त्रवन्मतः ॥३॥

व्याख्याकृताम्

ॐ तत्सत्

भूमिका

तापत्रय से सन्तप्त सांसारिक जीवों के उद्धार के लिये स्वयं जगदीश्वर ने ही वेद में आध्यात्मिक ज्ञान से भरे हुये अनेक प्रकार के उपदेश, मंत्र एवं उनके व्याख्यान-स्वरूप ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋषि महर्षियों द्वारा प्रकट किये हैं, जिन्हें उपनिषद् या ब्रह्म विद्या के नाम से व्यवहार किया जाता है। यह उपनिषद् विद्या अत्यन्त गोपनीय एवं समस्त विद्याओं में शिरोमुकुट के स्थान पर है। बिना इसके स्वाध्याय एवं मनन के द्वारा जनन-मरण-रूप संसार की अनादि दुःख यातनायें कभी भी जीवों को नहीं छोड़ सकतीं। मुख्यतः उपनिषद् ग्रन्थों में जीव, ब्रह्म की एकता, सृष्टि का विकास एवं संकोच तथा इसके परस्पर सम्बन्ध का निरूपण ही सर्वत्र देखने में आता है। मुख्य प्रयोजन संसार की अत्यन्त निवृत्ति है क्योंकि बिना संसार के छूटे दुःखों का अभाव और सुख की प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्घट है "ब्रह्मविद् आप्नोतिपरम्"। उपनिषद् का प्रचार वैदिककाल में हमारे देश में बहुत था प्रत्युत घर घर में था। विशेषतः निवृत्ति परायण ऋषिगण अपने पुत्रों को यह विद्या बतलाते थे। यदि कोई अधिकारी पुरुष शिष्य रूप में आता था तो उसकी पूर्णरूप से परीक्षा करके उसे भी ब्रह्म विद्या का रहस्य बतलाते थे। कर्ममार्ग से उपरत होकर ही मनुष्य इसके विचार का अधिकारी माना जाता था। कोई कोई कहते हैं कि निष्काम कर्म करते हुये भी उपनिषद् प्रतिपाद्य ब्रह्म का विचार हो सकता है अस्तु

शनैः शनैः वह बढ़ा हुआ प्रचार न्यूनता को प्राप्त होने लगा यहाँ तक कि वेद की ११३० शाखाओं की प्रतिशाखाओं में एक दो तीन उपनिषद् होती थी उनमें से इने गिने ही शाखाओं की उपनिषदें रह गईं। उनका पठन पाठन भी दुर्लभ हो गया। इसके पश्चात् उन्हीं उपनिषदों को ऋषियों ने स्मृतिरूप में कथन करके विस्तार के साथ प्रचार करना

आरम्भ किया, उन्हें ही गीता की उपाधि दी गई। जिस प्रकार उपनिषदों में ब्रह्मवाद का प्राधान्य एवं निवृत्ति मार्ग की विशेषता कथन की गई है उसी प्रकार प्रायः गीताओं में भी देखने में आता है। जिस प्रकार उपनिषदों की संख्या अनेक है उसी प्रकार गीतोपनिषद् भी अनेक संख्या में विद्यमान हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी ईश्वरगीतोपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है। इसका निबन्धन कूर्म पुराण के उत्तरार्ध भाग में किया गया है। क्योंकि गीतायें हमारे देश में बहुत दिन से अर्थात् सत्ययुग त्रेताकाल से प्रचलित हैं।

जब महाभारत का युद्ध हुआ देश की तमाम समृद्धि विनाश भाव को प्राप्त हो गई। बडी बडी विद्याओं की उसी युद्ध में समाप्ति हो गई, परन्तु भगवान् व्यासदेव की असीम कृपा से वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थों का विनाश न होने पाया। उन्होंने अपने योग्य शिष्यों को वेद स्मृति आदि ग्रन्थों को पढ़ाकर प्रचार करने के लिये आदिष्ट कर दिया। पुराण और इतिहास श्री सूत जी को दिया। उन्हीं पुराण ग्रन्थों में एवं महाभारत में उन गीताओं का प्रकरणानुसार संनिवेश कर दिया गया।

प्रकृत पुस्तक भी इसी विचारानुसार कूर्म पुराण में रक्खी गई है इसके कुल ग्यारह अध्याय एवं ४९६ श्लोक हैं, जिनमें वेदान्त सांख्य का उच्च श्रेणी का उपदेश दिया गया है। अन्तिम अध्याय में योग एवं संक्षेप में पाशुपत योग का भी परिचय दिया गया है। इस पुस्तक की रचना कब की है यह निश्चय करना यद्यपि कठिन है तथापि ग्यारहवें अध्याय के अन्त में जो सम्प्रदाय परम्परा दी हुई है उसे देख कर यह मालूम होता है कि "श्री मद्भगवद्गीता" से यह गीता पहले की है, क्योंकि वहां पर लिखा है कि "नारायणोपि भगवान् देवकी तनयो हरिः। अर्जुनाय स्वयं साक्षाद् दत्तवान् इनमुत्तमम्।" (अ. ११ श्लोक ३१,३२) जिस प्रकार श्री शंकर जी से इस गीता का रहस्य सुनकर तमाम ऋषियों ने शिष्य प्रशिष्यों द्वारा प्रचार किया उसी प्रकार श्री नारायण भी द्वापर के अन्त में अपने योग्य शिष्य अर्जुन को कर्म योग के रहस्य के

साथ गीता शास्त्र को सुनाकर उसे कृतकृत्य किया। यह गीता श्री मद्भगवद्गीता से बहुत संक्षेप रूप में कही गई है, परन्तु सूक्ष्म रूप में तमाम बातें इसमें विद्यमान है इसलिये यह बात इससे और दृढ़ हो जाती है कि इसी का विस्तार करने के लिये श्री मद्भगवद्गीता की सृष्टि हुई है। इस गीता में जो कर्म योग के उपदेश के लिये ऋषियों ने श्री व्यास से प्रश्न किया है उसका विस्तार से वर्णन या उसके स्वरूप का परिचय केवल नाम मात्र से ही दिया गया है। परन्तु श्री मद्भगवद्गीता में पूर्णरूप से है इससे भी यही बात सिद्ध होती है कि यह गीता उससे पहले की है। इस गीता से बहुत से श्लोक श्री मद्भगवद्गीता में ज्यों के त्यों मिलते हैं, यह भी इसकी प्राचीनता में प्रबल प्रमाण है। इसकी रचना शैली भी बहुत ही प्राचीन सी है। जैसा अद्वैत ज्ञान का स्वरूप इस गीता में है वैसा अन्यत्र कहीं भी देखने में नहीं आता। तमाम गीताओं से इस गीता में एक विचित्रता यह भी है कि शिव एवं विष्णु में अभेद माना गया है। जैसे महाभारत में शिव एवं विष्णु के स्वरूप में एकता का उपदेश दिया गया है वैसा ही इस गीता में भी है। प्रत्युत शैवों के प्रति विष्णु की निन्दा का सर्वथा त्याग बताया है। इस समय भारतवर्ष में नाना प्रकार के सम्प्रदायों के प्रचार से तत्त्व-विचार की शैली में विभिन्नता और संकीर्णता आगई है तथा एक सम्प्रदाय के पुरुष दूसरे सम्प्रदाय के साथ वह व्यवहार करते हैं जो कि सर्वथा सभ्य समाज के नियमों से विपरीत है एव शास्त्र तात्पर्य के भी सर्वथा अनुकूल नहीं माना जा सकता। जैसे शैव, वैष्णव आदि साम्प्रदायों के नवीन आचार्यों की पद्धति सर्वथा शास्त्र विरुद्ध एवं द्वेषपूर्ण हैं जिनसे देश की हर प्रकार की क्षति हुई है। इन्हीं घरेलू झगड़ों में हर प्रकार के विचारों की भी पद्धति में बडा भारी परिवर्तन हो गया है। यद्यपि यह अंकुर आधुनिक आचार्यों द्वारा ही नहीं आरोपित हुआ है। यह अत्यन्त प्राचीन काल में भी किसी न किसी रूप में विद्यमान था, परन्तु आधुनिक आचार्यों की कटुता ने इसे बहुत ही विशाल रूप दे दिया है। परन्तु यह ईश्वर गीता प्रत्येक प्रकार के शैव वैष्णव भेदों को दूर करते हुये एकता के सूत्र में ग्रथित करते हुये आर्यों के आदिम सिद्धांत

अद्वैतनिष्ठा पर पहुंचा देती है। इससे इसका महत्व और भी अधिक वढ़ जाता है। शैव वैष्णव मतभेदों को दूर करने के लिये इस गीता से अच्छा कोई और प्रदर्शन अन्यत्र मिलना असम्भव है। यद्यपि इसका प्रतिपादन श्री शिव जी के द्वारा हुआ है, इसमें मुख्यत: श्रेष्ठता श्री शंकर जी की ही है परन्तु जिस प्रकार के भाव वैष्णवों के शिव के प्रति होते हैं वैसा इसमें कहीं भी विष्णु के प्रति नहीं लिखा गया हैं। यह इसकी महान् उदारता है जो कि ध्यान पूर्वक अवलोकन से पाठकों को सहज में ही ज्ञात हो जावेगी।

यद्यपि यह गीता निराकार ब्रह्मरूप शिवतत्त्व का उपदेश करती है तथापि परमात्मा के सगुण रूप को भी उचित स्थान देती है। उच्च श्रेणी के ज्ञानोपदेश के साथ ही साथ भक्ति मार्ग, अभ्यास योग को भी महत्व एक सा ही प्रदान करती है। नाना प्रकार की उपासनायें सब एक ब्रह्म की हो उपासनायें हैं। कोई भी उपासक किसी भी प्रकार से ईश्वर की उपासना करे उसको अन्त में श्रेय प्राप्ति एक सी ही होती है। इस परम उदार धर्म का प्रतिपादन सुन्दर शब्दों में किया गया है। यह गीता समन्वय धर्म की पक्षपातिनी है। इसमें प्रमुखतया किसी सम्प्रदाय विशेष की छाप नहीं है। प्रत्युत साम्प्रदायिक कटुता जो बहुत काल से हिन्दुस्थान में चली आ रही है उसे निवारण करने के लिये ही इसकी सृष्टि हुई है। ऐसा अमूल्य रत्न अब तक केवल संस्कृतज्ञ पंडितों के ही पाठ का विषय था। इस पर न तो संस्कृत या हिन्दी भाषा में ही कोई व्याख्यान या टीका किसी ने की थी इसलिये सर्व साधारण के लिये इसका उपयोग दुर्लभ था। इस त्रुटि को दूर करने के लिये यह 'भावार्थ-दीपिका' नामक टीका लिखी गई है। इसकी प्रेरणा मुझे स्वर्गीय श्री फौजदार पर्वतसिंह जी के द्वारा प्राप्त हुई थी। विश्वास है कि प्रस्तुत अनुवाद के परिशीलन द्वारा जिज्ञासुगण ऐहिक और पारलौकिक सभी प्रकार के सौख्य के भागी बनेंगे।

स्वामी जी

श्री पीताम्बरापीठ वनखण्डेश्वर

दतिया (मध्य प्रदेश)

प्रस्तावना

आर्य भूमि भारत के ऋषि मुनियों ने वेद में कर्म, उपासना एवं ज्ञान के अपने तीन प्रकारों द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। उपनिषदों में योगाभ्यास का भी स्वतन्त्र रूप से उपदेश हुआ है। मनुष्य रुचि और योग्यता के अनुसार इन सम्यक् साधनों का आश्रय लेकर परम पुरुषार्थ को प्राप्त करता है, क्योंकि ब्रह्म के साक्षात्कार में वेदों का अन्तिम तात्पर्य समन्वित है और महर्षि वेद व्यास का "तत्तुसमन्वयात्" सुत्र इस कथन का श्रेष्ठ प्रमाण है। यद्यपि– उपनिषद् के रूप में वेद के उस विभाग का प्रादुर्भाव पहले ही हो चुका था, जिसमें अनेक प्रकार से ब्रह्म का निरूपण हुआ है, और उसके ज्ञान से सुखद शान्ति की प्राप्ति बताई गई है, तथापि काल-क्रम से समाज में किंचित् आचारिक न्यूनता के प्रवेश के कारण बुद्धिवाद के इस रहस्य को समझने में एक कठिनाई उपस्थित हो गई। अतएव यह आवश्यक समझा गया कि इस श्रोत ज्ञान की सरल सुबोध ढंग से व्याख्या की जाय और उसके फलस्वरूप अनेक प्रकार के गीता ग्रन्थों ने निर्माण पाया।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उपनिषद भाग की विशद व्याख्या करना गीताओं का एक मात्र उद्देश्य है। "गीता" शब्द के साथ प्रायः स्त्री–लिंग रूप में "उपनिषद" संज्ञा का प्रयुक्त होना यह सिद्ध करने का पर्याप्त प्रमाण है कि गीता अपने मूल रूप में उपनिषद की विशेषता बताती है। अस्तु, वेद के शिरोभाग उपनिषद् के पश्चात् जब गीता ग्रन्थों की सृष्टि हुई तो व्यवहार में वेद को श्रुति, और गीताओं को स्मृति, संज्ञा प्राप्त हुई। गीता ग्रन्थों के बीच सर्वोपरि ख्याति लोक में श्री मद्भगवद गीता उपनिषद् की हुई है, और यही कारण है कि साधारण व्यवहार में गीता नाम के उच्चारण-मात्र से श्रीमद्भगवद् गीता की स्मृति मानस-पटल पर अङ्कित हो जाती है। जन साधारण में कुछ ऐसी धारणा है कि यही एक गीता है, क्यों कि अन्य गीता-ग्रन्थों के सम्पर्क में जाने का अवसर उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। संस्कृत साहित्य में उपनिषदों के पश्चात् आध्यात्मिक तत्वों को विस्तृत

रूप में कहने वाले सभी साहित्य के लिये "गीता" पद व्यवहृत करने की एक प्रथा-सी चल पडी थी। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य में "गीता" नाम से सम्बोधित किये जाने वाले ग्रन्थों की संख्या आज बहुत बढी हुई है। शिव-गीता, गणेश-गीता, सूर्य-गीता, अवधूत-गीता, व्यास-गीता, मङ्कि-गीता, आदि। उन अनेक गीता-ग्रन्थों में "ईश्वर-गीता" को भी अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त है। जिस प्रकार भगवद्गीता महाभारत का एक उपाख्यान मात्र है, उसी प्रकार यह ईश्वर गीता भी कोई स्वतन्त्र पुस्तक नहीं; यह तो कूर्मावतार धारी भगवान विष्णु द्वारा कथित कूर्म पुराण के अन्तर्गत सनक सनन्दन, सनत्कुमार आदि ब्रह्मर्षियों के हेतु भगवान महादेव के प्रतिपादित ज्ञान के रूप में एक उत्कृष्ट प्रसङ्ग है।

ईश्वर गीता की एक परम्परा का उल्लेख करते हुये महर्षि व्यास जी ने कहा है:-

"नारायणोऽपि भगवान् देवकी तनयो हरिः।
अर्जुनाय स्वयं साक्षादुक्तवानिदमुत्तमम्॥"

(अध्याय ११ श्लो० १३१ व १३३)

उपर्युक्त दो चरणों से यह विदित हो जाता है कि ईश्वर गीता में प्रतिपादित ज्ञान वही ज्ञान है जो भगवान श्रीकृष्ण ने महाभारत के युद्ध क्षेत्र में अर्जुन को सुनाया था। श्रीमद्भगवत् गीता और ईश्वर गीता में कतिपय समानताएं भी यह सिद्ध करने का प्रमाण है कि ईश्वर गीता उतनी ही प्राचीन है जितनी भगवद् गीता। दोनों–गीताओं में समान रूप से कर्म, ज्ञान एवं भक्ति की सार्थकता प्रमाणित हुई है; अन्तर केवल इतना है कि ईश्वर-गीता में स्वयं ऋषियों की ज्ञान विषयक आकांक्षा होने के कारण ज्ञानयोग की प्रधानता है तथा भगवद् गीता में अर्जुन का कर्तव्य सम्बन्धी मोहजाल नष्ट करने के निमित्त अपने परिवर्धित रूप में कर्म योग को प्रमुख-स्थान दिया गया। "ईश्वरगीता" में यद्यपि वेदान्त, सांख्य और योग सब को मथकर उनका निचोड़ निकाला गया है, तथापि वेदान्त विचारों की इसमें

अधिकता है। 'ईश्वर-गीता' के छठवें और ग्यारहवें अध्याय तो निश्चय ही विलक्षण हैं। इन अध्यायों में ईश्वर के जगच्छासन का महत्व एवं राजयोग का सविस्तार वर्णन अनेक बार मनन किये जाने योग्य है। यह एक ध्रुव सत्य है कि अध्यात्म विषय के गूढ़ तथ्यों को जिस सरलता एवं पूर्णता के साथ श्रीमद्भगवद् गीता ने उपस्थित किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है, तथापि इस में भी विवाद को अवसर नहीं कि उसके पश्चात् ईश्वर गीता का स्थान आता है। गीता का प्रधान विषय ब्रह्म, जीव और जगत का स्वरूप एवं उनका सम्बन्ध होने के नाते ईश्वर-गीता में भी क्रमशः इन तीन तत्वों का सु-सम्बन्ध रूप में प्रतिपादन हुआ है, जिस प्रकार श्रीमद्भगवद्-गीता के अन्तर्गत वैदिक अद्वैत ज्ञान का भागवत धर्म से सामञ्जस्य किया गया है, उसी प्रकार ईश्वर-गीता ने शैव पाशुपत धर्म का वेद से अविरुद्ध अंश में ऐक्य प्रतिपादन किया है। शैवों के पशु, पाश और पति नामक तीन पदार्थों के साथ योग और भक्ति का निरूपण भी बड़ी योग्यता से किया है। परमात्मा के उपास्य रूप शिव, विष्णु में अभेद का प्रतिपादन ईश्वर-गीता की महान् उदारता का निर्देश है, क्योंकि गीता ग्रन्थों में अन्यत्र यह बात कहीं नहीं मिलती। उदाहरणार्थ–

अह मेवहि संहर्त्ता संसृष्टा परिपालकः।
माया वै मामिका शक्तिर्माया लोक विमोहनी ॥

अ० ४ श्लो० १८

अथवा–

न ते मुक्ति प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुनः पुनः।
येत्वेनं विष्णुमव्यक्तं माञ्च देवं महेश्वरम् ॥

अ० ११ श्लो० ११४

"ईश्वर–गीता" कूर्म पुराण के उत्तर भाग के प्रथम ग्यारह अध्यायों में समाप्त हुई है और उसके श्लोकों में अनुष्टप् वृत्त की प्रधानता है, जो भाषा में सरस, सरल और मनोहर बन पड़े हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्रीसनत्कुमार तथा अन्य ब्रह्मर्षियों ने भगवान-विष्णु से नाम रूपात्मक

जगत् की उत्पत्ति के कारण, जीवन मरण में लिप्त तत्व, आत्मा-तत्व, मुक्ति की सत्ता संसार के निमित्त कारण, संसार के स्वामी, जगत् के साक्षीरूप से द्रष्टा, तथा ब्रह्म-तत्व के स्वरूप के विषय में विस्तृत जिज्ञासा की, तब वहां शंकर जी ने प्रगट होकर जिज्ञासुओं की अभिलाषा पूर्ति करते हुए उन्हें अपना पावन उपदेश दिया है। उन्होंने अपने इस उपदेश में ऋषियों को उपनिषदों के सिद्धान्तानुसार ज्ञानयोग एवं कर्म योग का सिद्धान्त समझाया है और ज्ञान योग की श्रेष्ठता निर्धारित की है:–

"सर्व्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रिय तमो मम ।
योहि ज्ञानेनमाश्रित्य, मामाराध्यति नान्यथा ॥"
(अ० ४ श्लो० २४)

ऋषियों का मुख्य प्रश्न आत्म-तत्व के स्वरूप के सम्बन्ध में था, और भगवान शंकर ने भी वेदान्त शास्त्र के प्रतिपाद्य तत्व एवं सांख्य-मत के अनुसार आत्मा का शुद्ध स्वरूप समझाते हुये उनका यथोचित सन्तोष किया है। शंकरजी ने आर्य संस्कृति की त्रिमूर्ति (Trinity) में पूर्ण सामञ्जस्य करते हुये एवं "एकं ब्रह्म द्वितीयन् नास्ति" अथवा 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" के वेदान्तानुसार सर्वत्र उस एक व्यापक ब्रह्म का प्रकाश देखकर अपना स्वरूप ही "ब्रह्म बताया है" और अपनी भक्ति जीवमात्र के कल्याण के लिए अनिवार्य ठहराई है। लोक में सर्वत्र अपनी स्तुति, अपनी आराधना का उपदेश देते हुए, और समस्त देवताओं से अपना ऐश्वर्य अधिक बताते हुए भगवान शंकर का वही ऊँचा आदर्श है, जिससे प्रेरित होकर भगवान श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र की भूमि में वह सुप्रसिद्ध श्लोक कहा था–

"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥"
(अ० ४ श्लो० ७)

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी (१) शिव द्रोही मम दास कहावै। सो नर सपनेहु मोहि न भावै ॥ (२) वन्दों बालरूप सोई रामू। सब विधि सुलभ जपत जस नामू ॥– आदि कतिपय कथनों के द्वारा साम्य

के दिग्दर्शन का सुन्दर प्रयत्न किया है, तथापि–ईश्वर की त्रिमूर्ति में सर्वश्रेष्ठ साक्षी निम्नांकित वेद वाक्य है:–

"एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्व,
भूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः।
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥"

स्थान स्थान पर शंकर जी ने अपने उपदेश को गोपनिय बताया है, किन्तु यह कदाचित् उन अधिकारियों से ही दुराव की वस्तु है जो आचार हीन हैं। कारण कि शंकर जी ने निष्पक्ष रूप से मनुष्य मात्र को ईश्वर भक्ति का अधिकारी बताया है। शूद्रों के सम्बन्ध में उनका यह स्पष्ट कथन है:–

'अन्येऽपि ये स्वधर्मस्थाः शूद्राद्या नीच जातयः।
भक्तिमन्तः प्रमुच्यन्ते काले नापि हि संगताः॥

अ० ४ श्लो० ११

पश्चात् ग्रन्थ में विभूति वर्णन एवं वन्ध निरूपण के साथ अद्वैत तत्व का विवेचन करते हुए उसके द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति प्राणियों के एक विशिष्ट समुदाय के लिए ही सम्भव बताई गई है। पाशुपत योग, भक्ति मिश्रत वैदिक कर्म योग, शिव लिंग-पूजन, और काशीवास "ईश्वर गीता के अन्य विषय हैं' जिनका शिवजी ने यथोचित मंडन किया है।

इस प्रकार ईश्वर गीता का किंचित् विवेचन करते हुए उसकी गम्भीरता स्पष्ट-विदित हो जाती है। श्रीयुत कन्नोमल एम० ए० ने भी एक स्थान पर ईश्वर गीता की प्रशंसा में लिखा है:–इस गीता में धार्मिक विचारों की गुरुता, दार्शनिक विषयों की गम्भीरता, भक्ति भावों की निर्मलता और हार्दिक भावों की उदारता खूब ही दिखाई गई है।" अतएव पहुंच इस परिणाम पर होती है कि उसमें अवसर के अनुकूल व्यक्तिगत विशेषताओं के साथ वे सब बातें हैं, जिनका परिचय श्रीमद्भगवद्-गीता में जन साधारण ने पाया है, जिस प्रकार भगवद्-गीता के उपदेश में कभी कभी अकारण-पारस्परिक विरोधी बातें देखी जाती हैं, उसी प्रकार वे ईश्वर गीता में भी उसके व्यापक प्रचार के साथ ढूंढ़ली जायेंगी, तथापि उसका आदर्श, उसका उद्देश्य केवल एक

होगा और वह मेरे अल्प संचित ज्ञान में भगवद् गीता के लिए अन्यत्र व्यक्त निज के शब्दों में इस प्रकार होगा:—

"गीता के अनुसार इस जगत में प्रत्येक-मनुष्य का पहला कर्तव्य यही है कि वह परमेश्वर के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके उसके द्वारा अपनी बुद्धि को यथा शक्ति निर्मल बनाये । प्रत्येक मनुष्य के लिए अपेक्षित है कि वह 'सर्वभूत हितेरता:" के सिद्धान्तानुसार सारी मानव जाति के हितार्थ-उद्योग करे, फिर उसके लिए चाहे जितना बलिदान आवश्यक हो । इस प्रकार गीता में वह विशुद्ध ज्ञान मूलक अनन्य भक्ति प्रधान, और निष्काम कर्म विषयक सन्देश दिया गया है, जिसका पालन यावज्जीवन आवश्यक है ।"

ऐसे श्रेष्ठ उपदेश पूर्ण ग्रन्थ की एक विचार पूर्ण टीका का बड़ा अभाव था, क्योंकि इस एक त्रुटि के ही कारण ईश्वर-गीता लोक में अपने विस्तृत प्रचार से वंचित रही है । सौभाग्य का विषय है कि अभी कुछ दिनों पूर्व हमारे पूज्य पाद श्री स्वामी जी महाराज ने एक सुन्दर, सरल व्याख्या के द्वारा अभाव की सामयिक पूर्ति की है । टीकाओं की सफलता प्राय: इस बात में देखी जाती है कि मूल का परिशीलन किए बिना ही पाठक वृन्द ग्रन्थ में प्रतिपादित तथ्यों का ज्ञान प्राप्त करलें, और उनकी समीक्षा भी साथ ही अवगत हो जाय । अनेक अमूल्य उद्धरणों से युक्त श्रीस्वामी जी की यह विशद व्याख्या इस न्याय से निश्चय ही एक उत्तम सफलता है । श्रीस्वामी जी की अनुकम्पा से मुझे इस दिव्य धर्म ग्रन्थ के फिर २ अवलोकन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिससे मुझे यह विश्वास है कि धर्म निष्ठा के ह्रास के इस युग में यह ग्रन्थ मानव जाति के कल्याण में अधिकाधिक समर्थ होगा ।

हरिमोहनलाल श्रीवास्तव एम. ए. एल. टी.
साहित्य रत्न,
दतिया, (मध्यप्रदेश)

ॐतत्सत्

विषयानुक्रमणिका

प्रथमाध्याय ५१

मुक्ति, ज्ञानादि आठ प्रश्नों के निमित्त सनत्कुमार आदि ऋषियों का श्री नारायण के प्रति प्रश्न करना, श्री शंकरजी का प्रकट होना और उपदेश देने के लिए उनसे श्री नारायण का कहना, इस अध्याय का नाम आधिकारिक योग है, क्योंकि पूर्वोक्त ऋषियों ने तप के द्वारा इस अध्याय में ईश्वर गीता में कहे हुए ज्ञान को प्राप्त करने का अधिकारी बताया है।

द्वितीयोध्याय ५६

इस अध्याय में ज्ञान योग एवं कर्म योग का सिद्धान्त सविस्तार उपनिषदों के सिद्धान्तानुसार बताते हुए ज्ञानयोग की श्रेष्ठता मानी गई है, इसलिये इस अध्याय का नाम ज्ञान योगाध्याय है।

तृतीयाध्याय 23

वेदान्त शास्त्र प्रतिपादित तथा सांख्य मतानुसार आत्मा का शुद्ध स्वरूप इस अध्याय में कहा गया है, इसलिए इसको आत्मयोगाध्याय भी कहते हैं।

चतुर्थोध्याय ३४

इस अध्याय में शिवतत्व की श्रेष्ठता बताई गई है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र के भी परे-ब्रह्म स्वरूप शिवजी का स्वरूप बताया गया है, उन्हीं की भक्ति और उनके भक्तों की प्रशंसा की गई है, और अन्त में ईश का माहात्म्य भी स्फुट रूप में कहा गया है, इसलिये इस अध्याय को शिवतत्वयोग या भक्ति योग भी कहते हैं।

पांचवां अध्याय ४६

इस अध्याय में वेदशास्त्र से गर्भित श्री शिवजी की ऋषियों ने स्तुति की है। इसलिए इसे स्तुति योग भी कहते हैं।

छठां अध्याय ५२

इस अध्याय में बताया गया है कि सम्पूर्ण देवताओं के स्वरूप में श्रीशिव जी ही विद्यमान हैं। सम्पूर्ण देवताओं से उनका ऐश्वर्य अधिक है; अतएव इसका नाम ऐश्वर्य योगाध्याय भी है।

सातवां अध्याय ३२

इस अध्याय में विस्तार के साथ विभूतियों का वर्णन है, अन्त में वन्ध निरूपण भी किया गया है, इस हेतु इसे विभूति योग भी कहते हैं।

आठवां अध्याय १८

इस अध्याय में ब्रह्मनिरूपण किया गया है इससिए इसे ब्रह्मयोगाध्याय कहते हैं।

नवां अध्याय २०

इस अध्याय में भी ज्ञान योग का महत्व दर्शाया गया है, इसलिए यह भी ज्ञानयोगाध्याय कहा जाता है।

दशवां अध्याय २७

इसमें अद्वैत तत्व का निरूपण और उसकी दुरूहता बताई गई है; अतएव यह भी ज्ञान योगाध्याय है।

एकादशोऽध्याय ४७

इस अध्याय में पाशुपत योग का वर्णन पातञ्जल योग के सदृश किया गया है, इसके पश्चात् भक्ति मिश्रित वैदिक कर्मयोग,शिवलिंग का पूजन, काशी वास की महिमा बताई गई है, इसके अतिरिक्त शिव और विष्णु की एकता भी की गई है। अतएव इसे पाशुपत योगाध्याय या समन्वयाध्याय भी कहते हैं।

ॐतत्सत्

अथ ईश्वरगीता

टीकाकृन्मङ्गलाचरणम्

सच्चिदानन्दरूपाय ब्रह्मणेशिवरूपिणे ।
नमस्कुर्मो वयं नित्यं नित्यबोधप्रदायिने ।।

श्री गणेशायनमः, श्री साम्बसदाशिवाय नमः, ओं ऋषयऊचुः—

भवता कथितः सम्यक् सर्गः स्वायम्भुवः प्रभो ।
बह्माण्डस्यादिविस्तारोमन्वन्तरविनिश्चयः ।।१।।

तत्रेश्वरेश्वरोदेवो वर्णिभिर्धर्म्मतत्परैः ।
ज्ञानयोगरतैर्नित्यमाराध्यः कथितस्त्वया ।।२।।

तत्वञ्चाशेषसंसारदुःखनाशमनुत्तमम् ।
ज्ञानं ब्रह्मैक विषयं तेन पश्येम तत्परम् ।।३।।

त्वंहि नारायणात्साक्षात्कृष्णद्वैपायनात्प्रभो ।
आवाप्ताखिल विज्ञानस्तत्त्वां पृच्छामहे पुनः ।।४।।

भावार्थ :— ऋषियों ने श्री सूत जी से पूछा कि हे प्रभो, आपने स्वायम्भु सर्ग ब्रह्माण्ड का आदि विस्तार तथा मन्वन्तर का निर्णय सम्यक प्रकार और उन सब में अपने वर्ण धर्म में तत्पर एवं ज्ञान योग में निरत, पुरुषों के द्वारा आराधन के योग्य, ईश्वरों के भी ईश्वर परमातम-देव का निरूपण किया । समस्त संसार के दुःखों को नाश करने वाले, सबसे श्रेष्ठ, एक ब्रह्म के प्रतिपादन करने वाले ज्ञान को तत्व रूप से आप कहिए,

जिससे हम लोग उस पर तत्व का साक्षात् करें। कारण कि आपने साक्षात् नारायण भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास से समस्त विज्ञानों को प्राप्त किया है। अतएव पुनः हम लोग आपसे प्रश्न करते हैं ॥ ४ ॥

श्रुत्वा मुनीनां तद्वाक्यं कृष्णद्वैपायनात्प्रभुः ।
सूतः पौराणिकः श्रुत्वा भाषितुं ह्युपचक्रमे ॥५॥

भावार्थ :– मुनियों के पूर्वोक्त प्रश्न को सुनकर पुराण तत्व के जानने वाले श्रीसूत जी ने व्यास भगवान् से सुने हुए तत्व को कहना प्रारम्भ किया।

तथास्मिन्नन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ।
आजगाम मुनिश्रेष्ठो यत्र सत्रं समासते ॥६॥

भावार्थ :– उसी समय जब मुनि श्रेष्ठ यज्ञ के अनुष्ठानार्थ वहां पर एकत्र हुए थे और सूत जी से तत्व ज्ञान के विषय में प्रश्न किया गया था तब श्री भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास जी स्वयं वहीं पर आ गये ॥ ६ ॥

तं दृष्ट्वा वेदविद्वांसङ्कालमेघसमद्युतिम् ।
व्यासङ्कमलपत्राक्षं प्रणेमुर्द्विजपुङ्गवाः ॥७॥
पपात दण्डवद्भूमौ दृष्ट्वासौ लोमहर्षणः ।
प्रणम्य शिरसाभूमौ प्राञ्जलिर्वशगोऽभवत् ॥८॥

भावार्थ :– काले मेघ के समान कान्ति वाले, कमल के सदृश नेत्र वाले, वेद विद्या के विद्वान श्रीव्यास जी को देखकर उन द्विजोत्तम ब्राह्मणों ने प्रणाम किया, और श्रीसूत जी भी प्रथम दण्डवत् प्रणाम करने के पश्चात् दोनों हाथ जोडकर मस्तक द्वारा प्रणाम करते हुए व्यास जी की शरण में आये ॥ ७-८ ॥

पृष्टास्तेऽनामयं विप्राः शौनकाद्या महामुनिम् ।
समासृत्यासनं तस्मै तद्योग्यं समकल्पयन् ॥९॥

अथैतानब्रवीद्वाक्यं पराशरसुतः प्रभुः ।
कश्चिन्नह्यानिस्तपसः स्वाध्यायस्त श्रुतस्यच ॥१०॥

भावार्थ– शौनकादि मुनियों ने स्वागत पूर्वक श्री व्यास जी से कुशल क्षेम पूछने के अनन्तर उनको योग्य आसन पर बिठाया । इसके पश्चात् श्रीव्यास जी ने मुनियों से पूछा कि शास्त्र सम्बन्धी स्वाध्याय एवं तपश्चर्या में किसी प्रकार की हानि तो नहीं होती ? ॥१०॥

ततश्च सूतः स्वगुरुं प्रणाम्याह महा मुनिम् ॥
ज्ञानंतद्ब्रह्म विषयं मुनीनां वक्तुमर्हसि ॥११॥
इमेहि मुनयः शान्तास्तापसा धर्म्म तत्पराः ॥
शुश्रूषा जायते चैषां वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥१२॥
ज्ञानं विमुक्तिदं दिव्यं यन्मे साक्षत्त्वयोदितम् ।
मुनीनां व्याहृतं पूर्व्वं विष्णुना कूर्म्म रूपिणा ॥१३॥

भावार्थ–– इसके पश्चात् श्री सूत जी महामुनि व्यास जी को प्रणाम कर कहने लगे कि हे प्रभो ! पूर्व समय में कूर्म्मावतार धारण किये हुए श्री विष्णु ने मुनियों को जो मुक्ति देने वाला दिव्य ज्ञान दिया था और जिसका साक्षात् आपने मुझे उपदेश दिया था, वही ब्रह्म विषयक ज्ञान आज इन मुनियों को सुनाइये । उसे सुनने की इच्छा इन लोगों को हो रही है और ये मुनि वृन्द पूर्ण शान्त, तपस्वी एवं धर्मरत हैं । अतएव इन्हें-अवश्य सुनना चाहिये, ये उस ज्ञान के अधिकारी हैं । ११, १२, १३,

श्रुत्वा सूतस्य वचनं मुनिः सत्यवती सुतः ।
प्रणाम्य शिरसा रुद्रं वचः प्राह सुखावहम् ॥१४॥

भावार्थ– सत्यवती के पुत्र श्री महामुनि व्यास जी सूत के कथन को सुनकर देवाधिदेव श्री रुद्र देव को नमस्कार करके आनन्द उत्पन्न करने वाले बचन बोले ॥१४॥

श्रीव्यासउवाच

वक्ष्ये देवो महादेवः पृष्टो योगींश्वरैः पुरा ।
सनत्कुमार प्रमुखैः स स्वयं सम भाषत ।।१५।।

भावार्थ– एक समय सनत्कुमार आदि महर्षियों ने देवताओं में श्री शंकर जी से जो ज्ञान पूछा था और श्री शंकर जी ने जो उन्हें उपदेश किया था; वही ज्ञान मैं आप लोगों को सुनाता हूँ ।। १५।।

सनत्कुमारः सनकस्तथैव च सनन्दनः ।
अङ्गिरा रुद्र सहितो भृगः परम धर्म्मवित ।।१६।।
कणादः कपिलो गर्गो वामदेवो महामुनिः ।
शुक्रो वशिष्ठो भगवान् सर्व्वे संयतमानसाः ।।१७।।
परस्परं विचार्य्यैते संयमाविष्टचेतसः ।
तप्तवन्तस्तपोघोरं पुण्ये वदरिकाश्रमे ।।१८।।
अपश्यंस्ते महायोगमृषि धर्म्मसुतं मुनिम् ।
नारायणमनाद्यन्तं नरेण सहितं तदा ।।१९।।

भावार्थ– सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, अङ्गिरा, रुद्र के सहित परम धर्मज्ञ भृगु, कणाद, कपिल, गर्ग, महामुनि रामदेव, शुक्र और भगवान् वशिष्ठ संयतमन से परस्पर विचारकर पवित्र वदरिकाश्रम में घोर तप के अनुष्ठान में दत्तचित्त हुये । तप में निरत मुनियों ने महायोगी ऋषि धर्म के प्रवर्त्तक नर के सहित आदि अन्त रहित नारायण ऋषि का साक्षात् किया ।।१६।१९।।

संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः सर्व वेद समुद्भवैः ।
प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनो योगवित्तमम् ।।२०।।

भावार्थ– तब उन ऋषियों ने समस्त वेद में कहे हुये नाना प्रकार के स्तोत्रों से योग वेत्ताओं में श्रेष्ठ श्री नारायण ऋषि की स्तुति करके भक्ति पूर्वक नमस्कार किया ।।२०।।

विज्ञाय वाञ्छितं तेषां भगवानपि सर्व्ववित् ।
प्राह गम्भीरया वाचा किमर्थं तप्यते तपः ॥२१॥

भावार्थ– सर्वज्ञ भगवान् ने भी उन मुनियों के मनोभिलषित विषयों को जानकर गम्भीर वाणी से कहा कि मुनियों आप लोग किस अर्थ के लिए तपस्या कर रहे हैं ॥२१॥

अब्रुवन हृष्टमनसो विश्वात्मानं सनातनम् ।
साक्षान्नारायणं देवमागतं सिद्धिसूचकम् ॥२२॥
वयं संयममापन्नाः सर्वे वै ब्रह्मवादिनः ।
भवन्तमेकं शरणं प्रपन्नाः पुरुषोत्तमम् ॥२३॥
त्वं वेत्सि परमं गुह्यं सर्वं तु भगवानृषिः ।
नारायणः स्वयं साक्षात्पुराणेऽव्यक्तपूरुषः ॥२४॥
न ह्यन्यो विद्यते वेत्ता त्वामृते परमेश्वरम् ।
स त्वमस्माकमखिलं संशयं छेत्तुमर्हसि ॥२५॥

भावार्थ–समस्त सनातम जगत् के आत्मस्वरूप एवं दिव्य स्वरूप वाले सिद्धि के सूचक साक्षात् नारायण को आये हुये देखकर बडे प्रसन्न हो मुनिगण बोले– "हम लोग संयम को धारण करने वाले एवं परमात्मा में सदैव लीन रहने वाले पुरुषों में उत्तम एक आपकी शरण में आये हैं। आप समस्त गुह्य बातों के जानने वाले हैं; भगवान् और ऋषि भी हैं। आप नारायण अर्थात् समस्त प्राणियों में व्यापक स्वरूप वाले स्वतंत्र, अनादि, साक्षात् एवं अव्यक्त पुरुष से सर्वत्र स्थित हैं। आप परमेश्वर्य स्वरूप वाले हैं, आप को छोडकर समस्त विषयों का ज्ञाता कोई दूसरा नहीं। इसलिए आप हम लोगों के समस्त संशयों को दूर कीजिये ॥२२।२५॥

किं कारणमिदं कृत्स्नं को नु संसरते सदा ।
कश्चिदात्मा च का मुक्तिः संसारः किन्निमित्तकः ॥२६॥

क: संसारपतीशान: को वा सर्वं प्रपश्यति ।
किं तत्परतरं ब्रह्म सर्वं नो वक्तुमर्हसि ।।२७।।

भावार्थ– यह नाम रूपात्मक जगत् किस कारण से उत्पन्न हुआ है, सुख दुःखादि भावों युक्त कौन तत्व जीवन मरणादि अवस्थाओं को प्राप्त हो रहा है, आत्मा क्या वस्तु है, मुक्ति क्या वस्तु है, इस संसार का निमित्त कारण क्या है, इस संसार का स्वामी कौन है, साक्षीरूप से समस्त जगत् का द्रष्टा कौन है, इन समस्त प्रश्नों का उत्तर आप हम लोगों से कृपया कहें ।।२६, २७।।

एवमुक्त्वा तु मुनय: प्रापश्यन् पुरुषोत्तमम् ।
विहाय तापसं वेषं संस्थितं स्वेन तेजसा ।।२८।।
विभ्राजमानं विमलं प्रभा-मण्डल-मण्डितम् ।
श्री-वत्स-वक्षसं देवं तप्त-जाम्बूनद-प्रभम् ।।२९।।
शङ्ख-चक्र-गदा-पाणिं, शार्ङ्ग-हस्त-श्रियावृतम् ।
न दृष्टस्तत्क्षणादेव नरस्तस्यैव तेजसा ।।३०।।

भावार्थ– पूर्वोक्त प्रश्नों के पूछे जाने पर मुनियों ने तपस्वी वेष से रहित, अपने निजी तेज से प्रकाशित, निर्मल प्रभा मण्डल से सुशोभित श्रीवत्स नामक चिन्ह से युक्त,तप से सोने की प्रभा के समान दीप्तिमान लक्ष्मी सहित तथा शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष धारण किये श्रीनारायण देव का साक्षात् किया । उस समय भगवान् विष्णु का तेज इस प्रकार बढ़ा हुआ था कि उनके तेज के अतिरिक्त नर का स्वरूप कहीं भी नहीं दीख पडता था ।।२८।३०।।

तदन्तरे महादेव: शशाङ्काङ्कितशेखर: ।
प्रसादाभिमुखो रुद्र: प्रादुरासीन्महेश्वर: ।।३१।।
निरीक्ष्य ते जगन्नाथं त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम् ।
तुष्टुवुर्हृष्टमनसो भक्त्या तं परमेश्वरम् ।।३२।।

भावार्थ– इतने में ही देवाधिदेव श्री महादेव जी प्रसादाभिमुख होकर प्रकट हुए। उनके मस्तक में सुन्दर द्वितीया का चन्द्रमा सुशोभित हो रहा था। इस प्रकार समस्त जगत् के स्वामी तथा त्रिनयन एवं चन्द्रमा से भूषित परमेश्वर को आया देखकर समस्त मुनियों ने भक्तिपूर्वक स्तुति की।

जयेश्वर महादेव जय भूतपते शिव ।
जयाशेषमुनीशान तपसाऽभिप्रपूजित ॥ ३३ ॥
सहस्रमूर्ते विश्वात्मन् जगद्यन्त्रप्रवर्त्तक ।
जयानन्त जगज्जन्म-त्राण-संहार-कारक ॥ ३४ ॥
सहस्रचरणेशान शम्भो योगीन्द्र वन्दित ।
जयाम्बिकापते देव नमस्ते परमेश्वर ॥ ३५ ॥

भावार्थ– मुनियों के स्तुति वचन इस प्रकार थे। हे ईश्वर समस्त देवों में श्रेष्ठ, आपकी जय हो। हे समस्त प्राणियों के स्वामी, कल्याण स्वरूप, आपकी जय हो। हे समस्त मुनियों के स्वामी, तप से पूजित, आपको जय हो। हे समस्त जगत् के आत्म स्वरूप, सहस्र मूर्ति वाले तथा इस जगद्रूप यन्त्र के चलाने वाले, आपकी जय हो। हे अनन्त, इस जगत् के उत्पादक,पालक,संहारक स्वरूपवाले, आपकी जय हो। हे ईशान ? आप सहस्रों अर्थात् अनेकों चरण वाले हो। हे शम्भो ? आप योगियों से भी वन्दित हो। हे अम्बिकापते देव, आपकी जय हो। हे परमेश्वर ? हम सब आपको नमस्कार करते हैं ॥ ३३, ३४ ॥

संस्तुतो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः ।
समालिङ्गय हृषीकेशं प्राह गम्भीरया गिरा ॥३६ ॥

भावार्थ– इस प्रकार जब सब ने श्री शंकर जी की स्तुति की, तब समस्त जगत् के स्वामी, त्रिनयन से भूषित, तथा भक्तों पर कृपा करने वाले शिवजी श्री हृषीकेश विष्णु भगवान को आलिंगन करके गम्भीर वाणी से बोले ॥ ३६ ॥

किमर्थं पुण्डरीकाक्ष मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः ।
इमं समागता देशं किन्नु कार्यं मयाऽच्युत ।।३७।।

भावार्थ– हे कमल के समान नेत्र वाले जनार्दन ? ब्रह्म वेत्ता मुनियों का यह समुदाय यहां पर किस लिये आया है। हे अच्युत हमारा इस समय क्या कर्तव्य है ।। ३७ ।।

आकर्ण्य तस्य तद्वाक्यं देवदेवो जनार्द्दनः ।
प्राह देवो महादेवं प्रसादाभिमुखं स्थितम् ।। ३८ ।।
इमे हि मुनयो देव तपसा क्षीणकल्मषाः ।
अभ्यागतानां शरणं सम्यग्दर्शनकांक्षिणाम् ।। ३९ ।।
यदि प्रसन्नो भगवान्मुनीनां भावितात्मनाम् ।
सन्निधौ मम तज्ज्ञानं दिव्यं वक्तुमिहार्हसि ।। ४० ।।
त्वं हि वेत्सि स्वमात्मानं न ह्यन्यो विद्यते शिव ।
वद त्वमात्मनात्मानं मुनीन्द्रेभ्यः प्रदर्शय ।। ४१ ।।

भावार्थ– श्री शंकर जी के वचन सुनकर देवों के भी देव श्रीविष्णु भगवान् प्रसादाभिमुख स्थित महादेव जी से बोले हे देव, ये मुनिगण बड़े तपस्वी हैं तथा समस्त दोषों से रहित हैं। यदि आप शरण में आए हुये पवित्र अन्तःकरण वाले और सम्यग् ज्ञान के इच्छुक इन मुनियों पर प्रसन्न है, तो हमारे समीप में विद्यमान होकर इन्हें ब्रह्म विषयक दिव्य ज्ञान का उपदेश देवें। हे कल्याण स्वरूप आप स्वयं अपने स्वरूप के ज्ञाता हैं; आपके बिना और कोई दूसरा ज्ञाता इस संसार में नहीं है। इसलिए इन मुनियों को अपना स्वरूप बतलाइये ।।३८।४१।।

एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रोवाच मुनिपुङ्गवान् ।
प्रदर्शन्योगसिद्धिं निरीक्ष्य वृषभध्वजम् ।। ४२ ।।
सन्दर्शनादुमेशस्य शंकरस्याथ शूलिनः ।
कृतार्थं स्वयमात्मानं ज्ञातुमर्हथ तत्वतः ।। ४३ ।।

द्रष्टुमर्हथ देवेशं प्रत्यक्षं पुरतः स्थितम् ।
ममैव सन्निधावेव यथावद्वक्तुमीश्वरम् ।। ४४ ।।

भावार्थ– इस प्रकार भगवान हृषीकेश श्री शंकर जी से प्रार्थना कर चुकने पर योग सिद्धि को प्रदर्शित करते हुये तथा श्रीशंकर जी की ओर अवलोकन कर श्री विष्णु भगवान् मुनियों से बोले । हे मुनियो ? आप सब भगवान् उमापति; त्रिशूल-धारी शङ्कर जी के दर्शन से अपने को कृतार्थ समझें । यथार्थतः संमुख विद्यमान प्रत्यक्ष श्री शंकर जी के दर्शन करें । हमारे समीप में ही समस्त तत्वों के बोध कराने में आप सबको समर्थ हैं । ।। ४२।४४ ।।

निशम्य विष्णोर्वचनं प्रणम्य वृषभध्वजम् ।
सनत्कुमारप्रमुखाः पृच्छन्ति स्म महेश्वरम् ।। ४५ ।।

भावार्थ– श्री विष्णु भगवान् के वचन सुनकर सनत्कुमार आदि ऋषियों ने शंकर जी को नमस्कार करके पूछना आरम्भ किया ।।४५।।

अथास्मिन्नन्तरे दिव्यमासनं विमलं शिवम् ।
किमप्यचिन्त्य गगनादीश्वरार्थे समुद्बभौ ।। ४६ ।।
तत्रासससाद योगात्मा विष्णुना सह विश्वकृत् ।
तेजसा पूरयन्विश्वं भाति देवो महेश्वरः ।। ४७ ।।

भावार्थ– इसके पश्चात् आकाश से दिव्य, विमल, अचिन्त्य स्वरूप वाला एक आसन श्री शंकरजी के लिए प्रकट हुआ, और उस पर परमयोगी, समस्त विश्व को उत्पन्न करने वाले श्री उमापति श्री विष्णु के साथ आसीन हुये । उस समय अपने अलौकिक दिव्य तेज से समस्त विश्व को पूरित करते हुये श्री महेश्वर जी विराजित हो रहे थे । ।।४६।४७।।

ततो देवाधिदेवेशं शंकरं ब्रह्मवादिनः ।
विभ्राजमानं विमले तस्मिन्ददृशुरासने ।। ४८ ।।

तमासनस्थं भूतानामीशं ददृशिरे किल।
यदन्तरा सर्वमेतद्यतोऽभिन्नमिदं जगत् ॥ ४९ ॥

भावार्थ– इसके पश्चात् श्री शंकर जी को दिव्य, विमल उस आसन पर बैठे हुए, उन ब्रह्मवादी मुनियों ने देखा, जिनसे यह नाम रूपात्मक जगत् अभिन्न रूप में प्रतीत हो रहा हैं; क्योंकि उनमें ही समस्त जगत् की स्थिति है ॥ ४८।४९ ॥

स वासुदेवमीशानमीशं ददृशिरे परम्।
प्रोवाच पृष्टो भगवान्मुनीनां परमेश्वरः ॥ ५० ॥
निरीक्ष्य पुण्डरीकाक्षं स्वात्मयोगमनुत्तमम्।
तच्छृणुध्वं यथान्यायमुच्यमानं मयानघाः।
प्रशान्तमनसः सर्वे विशुद्धं ज्ञानमैश्वरम् ॥ ५१ ॥

भावार्थ– श्री वासुदेव के सहित आसन पर विराजित श्री भगवान् शंकर मुनियों को उत्तर देने में तत्पर हुए। श्री विष्णु की ओर अवलोकन करके वे इस प्रकार बोले। हे नितान्त शुद्ध अन्तःकरण वाले मुनिगण ? शान्त मन से आप सब विशुद्ध ईश्वरीय ज्ञान को श्रवण करें ॥ ५०।५१ ॥

इति श्री कूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु हिन्दी-भावानुवादविलसितासु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससम्वादे प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्याय

ईश्वर उवाच

अवाच्यमेतद्विज्ञानं मम गुह्यं सनातनम् ।
यन्न देवा विजानन्ति यतन्तोऽपि द्विजातयः ।।१।।

इदं ज्ञानं समाश्रित्य ब्राह्मीभूता द्विजोत्तमाः ।
न संसारं प्रपद्यन्ते पूर्व्वेऽपि ब्रह्मवादिनः ।।२।।

गुह्याद गुह्यतमं साक्षाद् गोपनीयं प्रयत्नतः ।
वक्ष्ये भक्तिमतामद्य युष्माकं ब्रह्मवादिनाम् ।।३।।

भावार्थ– श्री भगवान् देवाधिदेव शंकर जी ऋषियों के पूर्वोक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए बोले । हे मुनियो ? मेरा यह विज्ञान जो आप सबको सुनाना चाहता हूं, अनधिकारियों के लिये अवाच्य है और अत्यन्त गोपनीय एवं सनातन है, जिसे देवता लोग तथा विद्वान ब्राह्मण यत्न करने पर भी जानने में समर्थ नहीं । इस ज्ञान को जानकर बहुत से ब्रह्मवादी द्विजोत्तम ब्रह्मभाव को प्राप्त हो गये, जिसके प्रभाव से पुनः जन्म-मरणरूप संसार को प्राप्त नहीं होते हैं । गुह्य से भी गुह्यतम ज्ञान मैं आज भक्ति से युक्त तथा वेद रहस्य को जानने वाले आप सब से कहता हूं । इसे प्रयत्न से गुप्त रखियेगा, क्योंकि अनधिकारियों को यह ज्ञान नहीं सुनाया जाता ।।१।३।।

आत्मा यः केवलः स्वच्छः शुद्धः सूक्ष्मः सनातनः ।
अस्ति सर्व्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः ।।४।।

सोऽन्तर्य्यामी स पुरुषः स प्राणः स महेश्वरः ।
स कालोऽत्र तदव्यक्तं स च वेद इति श्रुतिः ।।५।।

भावार्थ–यह आत्मतत्व जिससे यह शरीर नाना प्रकार की चेष्टाओं को करने में समर्थ है, केवल निर्मल तथा अन्तरमल काम, क्रोधादि से रहित होने से शुद्ध, निरवयव होने से सूक्ष्म और जड का विकार न होने से सनातन तथा समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में चिन्मात्र रूप से स्फुरित होने से एवं प्रकृति से परे होने से सब का साक्षी, सब का नियामक होने से इसे अन्तर्यामी, समस्त शरीरों में व्यापक होने से पुरुष, सब में क्रियात्मक शक्ति प्रदान करने से प्राण, सब का ईश्वर होने से महेश्वर, सब कार्य जगत का अन्त समय में संहार करने से काल तथा समस्त जगत् को अपने में लीन कर लेने पर उसे ही अव्यक्त कहते हैं। इस प्रकार वेद आत्मा के स्वरूप को बतलाता है। कृष्ण यजुर्वेदीय श्वेताश्वेतरोपनिषद् में इस प्रकार वेद का आदेश है। "एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।" अ. ६ मं. ११

अर्थात्– एक ही देव समस्त प्राणियों में व्यापरूप से छिपा हुआ है; वही समस्त भूतों का अन्तरात्मा है, समस्त कर्मों का स्वामी है, सब का साक्षी है, चेतनस्वरूप, केवल और निर्गुण स्वरूप वाला है। कैवल्योपनिषद् में भी "स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः (प्रथम खण्डे ८ मं०) अर्थात् वही विष्णु, वही प्राण, वही काल, अग्नि, एवं चन्द्रमा आदि स्वरूपवाला है। "तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तद्देवतानां परमं च दैवतम्" (श्वे० उ० अ० ६ मं०) अर्थात् वह ईश्वरों का भी ईश्वर होने से महेश्वर कहा जाता है, तथा देवताओं का भी देवता होने से उसे परमात्मा कहते हैं, अन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतो दृष्टो द्रष्टाऽश्रुतः" (बृहदारण्यकः अ० ४—७ ब्रा० मं० २३) अर्थात् अन्तःकरण में स्थित होकर सब का नियमन करने से आत्मा को अन्तर्यामी कहते हैं। इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से युक्त आत्मा का निरूपण यहां से आरम्भ करके श्री कैलाशपति ने समस्त उपनिषद् विद्या का रहस्य मुनियों को बताया है। इसका स्फुट रूप में विवेचन प्रकरण के अनुसार किया जायगा ॥४। ५॥

अस्माद्विजायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते ।
समायी मायया बद्धः करोति विविधास्तान् ॥६॥
न चाप्य यं संसरति न संसारमयः प्रभुः ।
नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः ॥७॥
न प्राणो न मनोऽव्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च ।
न रूप रस गन्धाश्च नाहं कर्ता न वागपि ॥८॥
न पाणि पादौ नो पायुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमाः ।
न च कर्ता न भोक्ता वा न च प्रकृतिपूरुषौ ॥९॥

भावार्थ– समस्त जगत् का कारण आत्मा ही है, क्योंकि श्रुति उसी से समस्त विश्व की उत्पत्ति एवं उसी में लय भी बतलाती है। "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिविशन्ति तद् विजिज्ञासष्व तद् ब्रह्म" (तैं० उ० भृगुवल्ली अनु० १।) अर्थात् उसी ब्रह्म से समस्त जगत् उत्पन्न होकर चेष्टा कर रहा है तथा अन्त में उसी में जाकर लीन हो जाता है; उसी के जानने के लिये जिज्ञासा करनी चाहिये। "मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्, मयि सर्वं लयं याति तद् ब्रह्माद्वयमस्म्यहम्" (कैं० १०१९) अर्थात् ब्रह्म से ही समस्त जगत् उत्पन्न होता है और उसी में प्रतिष्ठा को भी प्राप्त हो रहा है, तथा अन्त में उसी में लय भाव को भी प्राप्त हो जाता है; वही अद्वितीय ब्रह्म मैं हूँ। इन दोनों प्रमाणों से ब्रह्म को उपादान एवं निमित्त उभय कारणत्व की सिद्धि होती है। "प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्" (वे० द० अ० १–४–२३) अर्थात् ब्रह्म निमित्त एवं उपादान दोनों कारण वाला है। माया शक्ति की स्फुरणा से वह मायी आत्मा नाना प्रकार के रूपों को धारण करता है। इस विषय में भी श्रुति बतलाती है "इन्द्रो मायाभिः पुरुष रूपमीयते" (बृ० ४–५–१९) अर्थात् ब्रह्म अपनी माया शक्ति से नाना प्रकार के रूपों को बनाता है। "अस्मान् मायी सृजते-विश्वमेतत् तस्मिश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः" (श्वे० उ० ४–९)

अर्थात् माया से ही मायापति महेश्वर इस विश्व को उत्पन्न करता है तथा विश्व में उसी माया से अन्य जो जीव तत्त्व है, वह नाना प्रकार की वासनाओं से बँधा हुआ है। परन्तु परमार्थतः आत्म तत्व न संसार भाव को प्राप्त होता है न संसार का विकार ही है, किन्तु स्वयं प्रभु है। हे द्विजोत्तम मुनिगण ? न तो वह पृथ्वी है, न जल है, न तेज है, न वायु है, न आकाश है, न प्राण है और न मन है, न इस समस्त कार्य वस्तुओं का कारण अव्यक्त ही है; न शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धात्मक पञ्च विषय– स्वरूप वाला ही है; न वह अहंकार है; न इनके ग्रहण करने वाली पंच ज्ञान इन्द्रियों के अन्तर्गत है; न हस्त, पाद, पायु, उपस्थ; मुख नामक पञ्च कर्मेन्द्रियों के अन्दर है, और कर्ता भोक्ता भी नहीं है, न वह प्रकृति पुरुष रूप मे ही है; किन्तु मन–वाणी से अगोचर, विलक्षण है। इसी भाव में श्रुति भी प्रमाण है – "न पुण्य पापे मम नास्ति नाशो न जन्म देहेन्द्रिय बुद्धिरस्ति। न भूमि रापोनच वन्हिरस्ति न चानिलोमेऽस्ति न चाम्वरञ्च। (कै० उ० मं० ३–४ खं० २) अर्थात्– आत्मा में न पुण्य है, न पाप है; न उसका जन्म है, न नाश है; न वह देह, इन्द्रिय, बुद्धि ही है; न पृथ्वी, जल, वायु तेज, अथवा आकाश है।

न माया नैव च प्राणा न चैव परमार्थतः।
यथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते ॥१०॥
तद्वदैक्यं न सम्बन्धः प्रपञ्च-परमात्मनोः।
छायातपौ यथा लोके परस्पर बिलक्षणौ ॥११॥
तद्वत्प्रपञ्च पुरुषौ विभिन्नौ परमार्थतः।

भाषार्थ– न वह माया है और न प्राण है, अर्थात्-परमार्थ में केवल आत्म तत्व ही है। इस विषय में श्रुति भी कहते हैं।

"न निरोधो न चोत्पत्तिर्नवन्धो न च शासनम्।
न मुमुक्षा न मुक्तिश्च इत्येषा परमार्थता" ॥

(ब्रह्म वि० उ० १०)

अर्थात् परमार्थ दशा में उत्पत्ति, विनाश, बन्धन, शासन, मुक्त होने की इच्छा अथवा मुक्ति आदि होती ही नहीं। इसे ही परमार्थ दशा कहते हैं। (इस प्रकार अध्यारोपावाद न्याय से जगद् की उत्पत्ति एवं लय के क्रम का उपदेश पूर्वोक्त श्रुतियों के अनुसार इन श्लोकों में कहा गया) इस विषय में पूर्वोक्त बात की पुष्टि के लिये प्रकाश तथा अन्धकार का दृष्टान्त देते हैं। जैसे प्रकाश और अन्धकार दोनों परस्पर विरोधी होने से एक नहीं हो सकते, उसी प्रकार इस दृश्यमान प्रपञ्च का तथा परमात्मा का सम्बन्ध नहीं बन सकता। और भी जैसे छाया और धुप लोक में परस्पर विलक्षण हैं, इसी प्रकार परमार्थ में प्रपञ्च एवं शरीरों में स्थित पुरुष संज्ञात्मक व्यवहार भी नहीं है। अर्थात् द्वैत जनित कोई भी परमार्थ में व्यवहार नहीं है। क्योंकि द्वैत में ही विरोधादि भावों की स्थिति है। जहाँ पर द्वैत है वही अनेक प्रकार के अनर्थ हैं; यदि परमार्थ दशा भी द्वैत भावापन्न होगी तो संसार के ही सदृश हो जायगी। इसलिये इससे विलक्षण अद्वैत स्वरूप वाली उसकी स्थिति मानकर उपदेश किया गया। यही वैदिक सिद्धान्त है, क्योंकि उपनिषदों में भी परमार्थ में एक आत्मा ही था ऐसा स्वीकार किया गया है–

" आत्मा वा इदमग्र एक एवासीत् " (ऐ० उ० मं० १)

अर्थात्– परमार्थावस्था में केवल एक आत्मा ही है। उस दशा में द्वैत का लेश भी नहीं था, इस बात को सहस्रों वेद के वचन प्रतिपादन करते हैं। इसलिये वैदिक ज्ञान की परमार्थ अवस्था का उपदेश इन श्लोकों द्वारा करते हुये आगे के श्लोकों में तर्क प्रमाण द्वारा उक्त सिद्धांत की पुष्टि करते हैं। १०--११

तथात्मा मलिनः सृष्टो विकारीस्यात्स्वरूपतः ॥ १२ ॥
नहितस्यभवेन्मुक्तिर्जन्मान्तर शतैरपि ।
पश्यन्ति मुनयो मुक्ताः स्वात्मानं परमार्थतः ॥१३ ॥
विकार हीनं निर्द्वन्द्व मानन्दात्मानमव्ययम् ॥

भाषार्थ– यदि आत्मा स्वरूप से मलिन हो या किसी वस्तु का कार्य हो तो वह विकारी हो जायगा। (स्वाभाविक इच्छा द्वेषादि गुणों से युक्त होने से सैकड़ों जन्मों में भी उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। इस विषय में श्री वेदान्त दर्शन का सूत्र प्रमाण है। "नात्मा श्रुतेर्नित्यत्वाच्चताभ्यः" (अ० २ पा० ३ सू० १७) अर्थात् श्रुतियों में आत्मा तत्व की नित्यता प्रतिपादित होने से आत्मा नित्य है। इसलिये किसी पदार्थ का कार्यत्व या स्वाभाविक मलिनता आत्मा में नहीं है। समस्त उपाधियों से मुक्त, शुद्धान्तःकरण वाले मुनिगण परमार्थ रूप से विकार हीन, अद्वैत, एक रस आनन्द स्वरूप वाले आत्मस्वरूप को देखते हैं ॥ १२, १३ ॥

अहं कर्ता सुखी दुःखी कृशः स्थूलेति या मतिः ॥ १४ ॥
साचाहंकार कर्तृत्वादात्मन्यारोपिताजनैः ॥
वदन्ति वेद विद्वांसः साक्षिणं प्रकृतेः परम् ॥ १५ ॥
भोक्तारमक्षरं बुद्धं सर्वत्र समवस्थितम् ।
तस्मादज्ञान मूलोहि संसारः सर्वदेहिनाम् ॥ १६ ॥

भाषार्थ– आत्म तत्व में कर्तव्य, सुख, दुःख, दुवलापन, मोटापा आदि जो अनुभूति हो रही है, वह अहंकार से उत्पन्न होती है; आत्मा में उसका आरोप मात्र है, अर्थात् आत्मा इन कर्तृत्वादि भावों से सर्वदा रहित है।* आध्यासिक सम्बन्ध से इनकी प्रतीति आत्मा में हो रही है। वेद विद्या के विद्वान ब्रह्मवेत्ता गण आत्मा को प्रकृति से परे साक्षी, समस्त जगत् का पालक अथवा जीव रूप से सुख दुःख का भोक्ता, अक्षर, ज्ञान रूप, सर्वत्र सम रूप से स्थिति ही कहते हैं। अतएव यह बात सिद्ध हुई कि समस्त प्राणियों को जो कर्तृत्वादि भाव युक्त संसार प्रतीत हो रहा है, वह अज्ञान मूलक है ॥ १४–१६ ॥

---

* अन्य वस्तु के धर्म अन्य वस्तु में जिस सम्बन्ध से प्रतीत हों, उसे आध्यासिक सम्बन्ध कहते हैं जैसे सीप में चांदी का ज्ञान तया रज्जु में सर्प की प्रतीति, इत्यादि।

अज्ञानादन्यथा ज्ञाना तत्त्वं प्रकृति सङ्गतम् ।
नित्योदितं स्वयं ज्योतिः सर्वगः पुरुषः परः ।। १७ ।।
अहंकार विवेकेन कर्त्ताहमिति मन्यते ।
पश्यन्ति ऋषयोऽव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।। १८ ।।

भाषार्थ– अज्ञान के बाध से यथार्थ ज्ञान जब उत्पन्न होता है तब प्रकृति के सहित नित्य प्रकाशात्म स्वयं ज्योति, सर्व व्यापक पर पुरुष का तत्व ज्ञान होता है, वही आत्मा अहंकार वृत्ति के साहचर्य्य से अपने को कर्ता मानता है । ऋषिगण अव्यक्त तथा नित्य, सद् असद् उभयात्मक स्वरूप वाले आत्मा को प्रत्यक्ष देखते है, क्योंकि नामरूपात्मक जगत् जब तक आत्मा में प्रतीत हो रहा है तब तक उसे सत् कहते हैं और ब्रह्मज्ञान के अनन्तर जगत् जब निवृत हो जाता है तब उसे ही 'असत्' कहते हैं । इस प्रकार जगत् के सद् असद् दोनों स्वरूप ब्रह्म में कारण रूप में विद्यमान रहते हैं; इसीलिये उसे सद् असद् उभयात्मक कहते हैं । श्रुति भी इस भाव को पुष्ट करती है ।

" सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्तिकिंचन "

अर्थात्– यह दृश्यमान समस्त जगत् परमात्मा से भिन्न नहीं है तत्स्वरूप ही है, इसलिये ब्रह्म के ही दोनों स्वरूप हैं ।।१७।१८।।

प्रधानं पुरुषं बुद्धा कारणं ब्रह्मवादिनः ।
ते नायं संगतः स्वात्मा कूटस्थोऽपि निरंजनः ।। १९ ।।
स्वात्मानमक्षरं ब्रह्म नावबुद्धचेत तत्वतः ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानं तस्माद् दुःखं तथेतरत् ।।२० ।।
रागद्वेषादयोदोषाः सर्वे भ्रान्ति निबन्धनाः ।
कर्मण्यस्य महान् दोषः पुण्यापुण्यमितिस्थितिः ।। २१ ।।

भाषार्थ– ब्रह्मवादी गण जगत् का कारण प्रकृति तथा पुरुष को बतलाते हैं । उन्हीं से संगत होकर कूटस्थ (निर्विकार) निरंजन होता हुआ भी आत्मा अपने स्वरूप को यथार्थ रूप से नहीं जान पाता है ।

अनात्म वस्तुओं में जो आत्म विज्ञान हो रहा है, इसी से सुख, दुःख आदि हो रहे हैं। राग द्वेषादि जितने दोष हैं, सब भ्रान्ति से आत्मा में प्रतीत हो रहे हैं। कर्मों का सम्बन्ध जो आत्मा से हो रहा है यही महान् दोष है, यही समस्त पुण्य पाप का हेतु है ।।१९।२१।।

तद्वशादेव सर्वेषां सर्व्व देहसमुद्भवः।
नित्यं सर्वत्र गुह्यात्मा कूटस्थो दोष वर्जितः ।।२२।।
एकः सन्तिष्ठतेशक्त्या मायया न स्वभावतः।
तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः ।।२३।।

भावार्थ– पूर्वोक्त कहे हुये पुण्य पापादि के सम्बध से ही समस्त प्राणियों के शरीरों की उत्पत्ति होती है, परन्तु आत्मा नित्य, सर्वत्र सम रूप में स्थित है। कूटस्थ अर्थात् पर्वत के शिखर के समान अचल तथा दोषों से रहित है, अर्थात् मायाशक्ति से समस्त जगत् को बनाकर नाना प्रकार के भेद जनित व्यवहारों का नियामक हो रहा है। स्वाभावतः यह बात आत्म तत्त्व में नहीं है। इसलिये मुनिगण परमार्थ दशा में अद्वैत ही कहते हैं, क्योंकि द्वैत की स्थिति काल्पनिक है ।।२२।२३।।

भेदोऽव्यक्त स्वभावेन सा च मायात्मसंश्रया।
यथा च धूमसम्पर्कान्नाकाशो मलिनो भवेत् ।।२४।।
अन्तःकरणजैर्भावैरात्मा तद्वन्न लिप्यते।
यथा स्वप्रभया भाति केवलः स्फटिकोपलः ।। २५।।
उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते।
ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विचक्षणाः ।।२६।।

भावार्थ– नाम रूपात्मक जो भेद प्रतीत हो रहा है, इसकी उत्पत्ति अव्यक्त से हुई है, और अव्यक्त ही माया है; वह माया आत्मा के आधीन है। श्रुति भी इसे बतलाती है –

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्"
(श्वे० उ० अ० ४ मन्त्र १०)

मूल प्रकृति, प्रधान, या अव्यक्त माया ही समस्त जगत् का कारण है, और 'महेश्वर' आत्मा ही माया का स्वामी है; परन्तु माया के गुणों से उसके (आत्मा के) स्वरूप में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता। जैसे आकाश धूम के सम्पर्क से मलिन नहीं होता, उसी प्रकार अन्तःकरणों के भावों से आत्मा निर्लेप है। जैसे स्फटिक मणि, उपाधि के सम्बन्ध से रहित होकर शुद्ध केवल अपनी प्रभा से भासित होता है, उसी प्रकार अनेक उपाधियों से रहित होकर आत्मा भी अपने स्वरूप से प्रकाशित होता है। जैसे स्फटिक मणि के समीप लाल पुष्प के सन्निधान से स्फटिक सफेद होता हुआ भी लाल रंग वाला मालूम होता है, परन्तु वास्तव में लाल रंग का स्फटिक से कोई सम्बन्ध नहीं है, उसी प्रकार आत्म तत्व में भी सुख-दुःख का सम्बन्ध जान लेना चाहिये। इस विषय पर कोई कोई केवल तार्किक ऐसा प्रश्न किया करते हैं कि आत्मा सर्वज्ञ है, उसको बुद्धि या अन्तःकरण के सम्बन्ध से अल्पज्ञत्व आ जाता है; इस लिए जीवत्व को आत्मा से सर्वथा पृथक मानना चाहिये। परन्तु यह सिद्धान्त अश्रौत है तथा निर्युक्तिक भी है, क्योंकि अन्य के धर्म से कोई अन्य धर्मी नहीं हो सकता; इसमें कोई दृष्टान्त नहीं है। जैसे आकाश में अग्नि जलती है, उससे दाह और प्रकाश दोनों वस्तुओं का सम्बन्ध है, परन्तु आकाश में जलने से दाह और प्रकाश आकाश के धर्म नहीं हो सकते, उसी प्रकार आत्मा का बुद्धि से सम्बन्ध है, परन्तु वास्तविक न होने से उससे आत्मा का कुछ भी नहीं बिगड सकता, न ये दोष ही दोष रूप में माने जा सकते हैं। इसीलिये विद्वान लोग इस जगत् को परमार्थ में ज्ञान स्वरूप ही कहते हैं, क्योंकि आत्मा से जगत् का कारण रूप से अभेद है यही सर्व मूर्द्धन्यमत है ।।२४।२६।।

अर्थ स्वरूपमेवान्ये पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टयः ।
कूटस्थो निर्गुणोव्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः ॥२७॥
दृश्यते ह्यर्थरुपेण पुरुषैर्ज्ञानदृष्टिभिः ।
यथा स लक्ष्यते रक्तः केवलं स्फटिको जनैः ॥२८॥
रत्तिकाद्युपधानेन तद्वत्परमपुरुषः ।
तस्मादात्माक्षरः शुद्धो नित्यः सर्वत्रगोऽव्ययः ॥२९॥

भाषार्थ- वैदिक ज्ञान विहीन अन्य लोग जो नाना प्रकार के कुमतों में विश्वास रखने वाले हैं, वे इस जगत को ब्रह्म से पृथक अर्थ स्वरूप से बतलाते हैं। जो ज्ञानी लोग हैं, जिनकी बुद्धि पक्षपात से रहित है, वे लोग परमात्मा को कूटस्थ, निर्गुण, व्यापक स्वभाव से चैतन्य स्वरूप वाला तथा अर्थ रूप से देखते हैं। जैसे स्फटिक मणि रक्त आदि रंगों के साहचर्य से सबको रक्त मालूम होता है, उसी प्रकार परम पुरुष परमात्मा भी जगत् स्वरूप वाला प्रतीत होता है। वास्तव में आत्मा शुद्ध ही है, इसीलिए आत्मा अक्षर, शुद्ध, नित्य, सर्वव्यापी और विकार रहित है ॥ २७ । २९ ॥

उपासितव्यो मन्तव्यः श्रोतव्यश्च मुमुक्षुभिः ।
यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वत्र सर्वदा ॥३०॥
योगिनः श्रद्दधानस्य तदा सम्पद्यते स्वयम् ।
यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभि पश्यति ॥३१॥
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।

भाषार्थ-पूर्वोक्त लक्षण लक्षित आत्मा को मुक्ति की इच्छा रखने वाले पुरुषों को चाहिये कि गुरु मुख से उसका श्रवण करें, श्रवण करने के पश्चात् तर्क की सहायता से मनन करें, तदनन्तर निदिध्यासन रूप से उसकी उपासना करें। इसी भाव को श्रुति भी कहती हैं। "आत्मा वारे दृष्टव्यः-श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" (वृ० ६-५-६) अर्थात् आत्म तत्व का साक्षात्, श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना चाहिये। इस

प्रकार अभ्यास की पुष्टि हो जाने पर, जब अन्तःकरण में सर्वत्र सदैव चैतन्य का प्रकाश दृष्टि गोचर होने लगता है, तथा श्रद्धालुयोगी पुरुष जब स्वयं समस्त ज्ञान वाला हो जाता है; जब समस्त प्राणियों में ब्रह्म को देखता है तब वह ब्रह्म भाव को प्राप्त हो जाता है ॥३०–३१॥

यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति ॥३२॥
एकी भूतः परेणासौ तदा भवति केवलं ।
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्य हृदि स्थिताः ॥३३॥
तदासावमृतीभूतः क्षेमं गच्छति पण्डितः ॥
यदा भूत पृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥३४॥
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते सदा ॥
यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः ॥३५॥
माया मात्रं तदा सर्वं जगद्भवति निवृतः ॥३६॥
यदा जन्म जरा दुःख व्याधीनामेक भेषजम् ॥
केवलं ब्रह्म विज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिवः ॥३७॥

भाषार्थ– जब योगी समाधिस्थ होकर परब्रह्म में एकत्व को प्राप्त कर समस्त भूतों को नहीं देखता है, तब वह केवल भाव को प्राप्त हो जाता है, । जब योगी के हृदय में सञ्चित कामनाओं का त्याग हो जाता है,तब वह अमृतभाव को प्राप्त होता हुआ विद्वान आनन्द को प्राप्त होता है । जब नानत्व मय भूतों की स्थिति को एक आत्मा से अभिन्न रूप में देखता है तथा उसी से समस्त जगत् के विस्तार को जानता है, तब योगी ब्रह्म भाव को प्राप्त हो जाता है । जब परमार्थतः आत्मा को केवल रूप में साक्षात करता है, तब समस्त जगत माया मात्र प्रतीत होने लगता है । जब जन्म जरा, व्याधि आदि दुःखों की एक ओषध केवल ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है तब जीव स्वयं शिव स्वरूप हो जाता है । इन श्लोकों में कहे हुये भावों को उपनिषदों में भी इसी प्रकार स्वीकार किया गया है––

"भिद्यते हृदय ग्रन्थि श्छिद्यन्ते सर्व संशयाः
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे"
(मु० उ० २–२–८)

अर्थात्– आत्मज्ञान होने पर हृदय की समस्त– ग्रन्थियाँ टूट जाती हैं और समस्त संशय नष्ट हो जाते हैं तथा समस्त कर्मों की ग्रन्थियाँ सर्वदा के लिये निर्मूल हो जाती हैं। इत्यादि–॥३२–३७॥

यथा नदी नदा लोके सागरेणैकतां ययुः ॥
तद्वदात्माक्षरेणासौ निष्कले नैकतां व्रजेत् ॥३८॥
तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न सांस्थितिः ॥
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यति जन्तवः ॥३९॥

भाषार्थ– जैसे नदी नद इधर उधर नाना प्रकार की कुटिल गति से बहते हुये भी अन्त में समुद्र में जाकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार आत्मा अक्षर, निष्कल ब्रह्म के साथ–एकता को प्राप्त हो जाते हैं। इस विषय में श्रुति प्रमाण भी है– "यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय। तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्"
(मु० उ० ३-२।८।)

अर्थात्—जैसे नदियां नाम रूपों को छोडकर समुद्र में जाकर एकत्व भाव को प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार नाम रूपात्मक भेद से निवृत्त होकर विद्वान् परात्पर ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। इसलिए परमार्थ में केवल विज्ञान ही है ; न वहां पर यह प्रत्यक्ष दृश्यमान प्रपञ्च है, न इसकी स्थिति ही है। लोक में अज्ञान से आवृत्त होने से विज्ञान को सब लोग नहीं जानते हैं इसलिये मोह को प्राप्त होते हैं ।३८–३९।

विज्ञानं निर्मलं सुक्ष्म निर्विकल्पं तदव्ययम् ॥
अज्ञानमितरत्सर्वं विज्ञानमिति तन्मतम् ॥४०॥
एतद्वः कथितं साङ्ख्यं भाषितं ज्ञानमुत्तमम् ॥
सर्व वेदान्त सारं हि योगस्तत्रैक चित्तता ॥४१॥
योगात्संञ्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्त्तते ॥
योग-ज्ञानाभि युक्तस्य नावाप्यं विद्यते क्वचित् ॥४२॥

भाषार्थ– विज्ञान वस्तु निर्मल सूक्ष्म निर्विकल्प और विकार शून्य हैं, इससे भिन्न सब अज्ञान है, इतना कहने के बाद श्री कैलाशनाथ ने समस्त मुनियों को सम्बोधित करते हुये कहा हे मुनियो ! ये जो ज्ञान आप सबको मैंने सुनाया है, इसे सांख्य कहते हैं, और यह समस्त विज्ञानों में उत्तम है। यही समस्त वेदान्त का सार है। इस विज्ञान में एक चित्तता प्राप्त करने को योग कहते हैं। योगाभ्यास से ज्ञान पुष्टता को प्राप्त होता है, तथा सद् ज्ञान के प्राप्त होने पर मनुष्य योग में प्रवृत्ति करता है। योग तथा ज्ञान के सम्मिलित होने पर मनुष्य को कहीं कोई वस्तु दुष्प्राप्य नहीं है ॥४०–४२॥

य देव योगिनो यान्ति सांख्यैस्तदति गम्यते ।
एकं साख्यञ्चयोगञ्च यः पश्यति स तत्त्ववित्॥४३॥
अन्ये हि योगिनो विप्रा ह्यैश्वर्य्यासक्तचेतसः ।
मज्जन्ति तत्र तत्रैव ये चान्ये कुण्ठ बुद्धयः ॥४४॥
यत्तत् सर्व मतं दिव्यमैश्वर्य्यममलं महत् ।
ज्ञान योगाभियुक्तस्तु देहान्तेतद् वाप्नुयात् ॥४५॥

भाषार्थ– जो स्थल योगियों को प्राप्त होता है वही स्थान सांख्यवादी ज्ञानियों को, अर्थात् ब्रह्मवादियों को भी मिलता है, दोनों की समान रूप में एकता है। जो योग एवं सांख्य को अभिन्न रूप से देखता है, वही तत्व वेत्ता है। हे ब्राह्मणो ! निष्काम कर्म योगियों से भिन्न जो सिद्धियों के इच्छुक योगी हैं, जिनको चित्त नाना प्रकार के ऐश्वर्यों में आसक्त है, वे सब कुण्ठित बुद्धि वाले होकर जनन—मरण रूप संसार में डूबते हैं, और इससे भिन्न सर्व सम्मत, दिव्य, निर्मल, महान् ऐश्वर्य जो श्रुतियों में प्रतिपादित है, उसको ब्रह्मज्ञान एवं निष्काम कर्म योग, तथा समाधि-योग से देह के अन्त में मनुष्य प्राप्त करता है ॥४३।४५॥

एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वरः ।
कीर्तितः सर्व वेदेषु सर्वात्मा सर्वतो मुखः ॥४६॥

सर्व रूप: सर्वरस: सर्वगन्धोऽजरोऽमर: ।
सर्वत: पाणि पादोऽहमन्तर्यामी सनातन: ।। ४७ ।।
अपाणि पादो जवनो ग्रहीता हृदिसंस्थित: ।
अचक्षुरपि पश्यामि तथाऽकर्ण: श्रृणोम्यहम् ।। ४८ ।।

भाषार्थ –अहं प्रत्यय का आश्रय यह आत्मा अव्यक्त माया वाला सर्व जनों का आत्मा तथा परमेश्वर रूप से समस्त वेदों में कहा गया है। वह सर्वतोमुख है, समस्त पदार्थ उसी के रूप हैं। सर्व रस, सर्वगन्ध अजर, अमर चारों तरफ उसी के हस्त पादादि हैं। अन्तर्य्यामी, सनातन तथा विना हाथ-पांव का होता हुआ भी, वह तीव्र गति वाला है और सबके हृदय प्रदेश में सत्ता मात्र से स्फुरित हो रहा है। विना नेत्र का समस्त वस्तुओं को देखता है तथा बिना कान के ही सब बातों का सुनने वाला है। यही बात उपनिषदों में भी कही है–

"अपाणि पादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षु: स श्रृणोत्यकर्ण: ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ।।"

(श्वे० उ० अ० ३ मं० १९) अर्थात आत्मा बिना हाथ पांव के ही समस्त वस्तुओं का ग्रहण करने वाला है, बिना नेत्र कर्ण के ही सब वस्तुओं का द्रष्टा तथा सुनने वाला है। वह समस्त वस्तुओं का वेत्ता है, उसका वेत्ता उससे अन्य कोई नहीं है, उसी को सब ऋषि लोग श्रेष्ठ पुरुष महान् आत्मा कहते हैं ।। ४६ । ४८ ।।

वेदाहं सर्वमेवेदं नमां जानाति कश्चन ।
प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिन: ।। ४९ ।।
पश्यन्ति ऋषयो हेतु मात्मन: सूक्ष्मदर्शिन: ।
निर्गुणामलरूपस्य यदैश्वर्य मनुत्तमम् ।। ५० ।।
भाषार्थ– शास्त्र दृष्टयातूपदेशो वाम देववत्,
(वेदान्त शा० १, १, ३०)

इस सूत्र के अनुसार श्री शंकर जी ऋषियों को उक्त उपदेश दिये हैं। हे मुनियो ! मैं समस्त वस्तुओं का ज्ञाता हूं, और मेरा ज्ञाता कोई नहीं है अर्थात् हमारे आदि अन्त को कोई नहीं जानता है। तत्त्व द्रष्टा-गण मुझे एक, महान, और पुरुष रूप से प्रतिपादन करते हैं, सूक्ष्म द्रष्टा ऋषिगण भी सब का कारण मुझे ही बतलाते हैं, जिस निर्गुण अमल रूप आत्मा का ऐश्वर्य अनुत्तम है अर्थात उसके बराबर और कोई भी वस्तु नहीं है ॥ ४९ । ५० ॥

यन्न देवा विजानन्ति मोहिता मम मायया ।
वक्ष्ये समाहिता यूयं श्रृणुध्वं ब्रह्मवादिनः ॥
नाहं प्रशस्तः सर्वस्य मायातीतः स्वभावतः ।
प्रेरयामि तथापीदं कारणं सूरयो विदुः ॥५२॥
यन्मे गुह्यतमं देहं सर्वगं तत्त्वदर्शिनः ।
प्रविष्टा मम सायुज्यं लभन्ते योगिनोऽव्ययम् ॥५३॥
येहि माया मति क्रान्ता मम या विश्वरूपिणीं ।
लभन्ते परमं शुद्धं निर्वाणन्ते मया सह ॥५४॥

भावार्थ– हे ब्रह्म वेत्ता मुनिगण ! जिस आत्मा के जानने में हमारी माया से मोहित देवतागण भी समर्थ नहीं हैं, उसे मैं आप सब महानुभावों से कहता हूं, समाहित चित्त से उसे श्रवण करें। स्वभाव से मेरा स्वरूप माया से परे है। अतएव सर्व साधारण को हमारा स्वरूप दुर्गम्य है। तथापि इस जगत् का मैं प्रेरक हूँ, इसे सब विद्वान लोग जानते हैं। हमारा गुह्य स्वरूप जो सर्वत्र व्यापक है, उसमें तत्त्वदर्शी योगीगण प्रविष्ट होकर हमारे सायुज्य को प्राप्त होते हैं। जो हमारी विश्वमोहिनी माया का अति क्रमण कर जाते हैं, वही शुद्ध निर्वाण के प्राप्त करने के भागी है॥ ५१–५४॥

नतेषां पुनरावृतिः कल्प कोटिशतैरपि ।
प्रसादान्मम योगीन्द्रा एतद्वेदानुशासनम् ॥५५॥

तत्पुत्र शिष्य योगिभ्यो दातव्यं ब्रह्म वादिभिः ।
मदुक्त मे तद्विज्ञानं सांख्यं योग समाश्रयम् ।।५६।।

भाषार्थ – ऐसे पुरुषों की करोडों कल्पों में भी पुनः संसार में आवृत्ति नहीं होती, क्योंकि इस विषय में हमारा प्रसाद उन लोगों पर रहता है । यह वेद का अनुशासन है–

'नच पुनरावर्तते–न च पुनरावर्तते, (छा० ८–१४–१)

यह परम गुह्य योग से युक्त सांख्य ज्ञान का निरूपण मैंने आप सब को सुनाया है । इसे योग्यपुत्र, शिष्य तथा योगी पुरुषों को ही आप सब प्रदान करना, क्योंकि यह अत्यन्त रहस्यमय है ।। ५५ । ५६ ।।

इति श्री कूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे ऋषि व्यास संवादे हिन्दी अनुवाद युक्ते द्वितीमोऽध्याध्यः ।।२।।

———

तृतीय अध्याय

ईश्वर उवाच

अव्यक्तादभवत्कालः प्रधानं पुरुषः परः।
तेभ्यः सर्व मिदं जातं तद्ब्रह्म मयं जगत ॥१॥
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोकें सर्व्वमावृत्य तिष्ठति ॥२॥

भाषार्थ– अव्यक्त से सबसे प्रथम काल की अभिव्यक्ति हुई, तत्पश्चात् प्रधान (माया) तथा पुरुषों का आविर्भाव हुआ, फिर तमाम वस्तुयें प्रकट हो गई। ब्रह्म से ही सब चीजें उत्पन्न होने से इस जगत् को भी ब्रह्मगय ही समझना उचित है। इसलिए जितने हस्तपादादि, नेत्र, कर्ण, मस्तक आदि वस्तुयें जगत् में दीख रही हैं इन सब को ब्रह्म आवृत करके प्रकाशित कर रहा है। यही भाव श्रुतियों में भी विशद् रूप से वर्णित है। (श्वेताश्वेतरोपनिषद के तृतीय अध्याय के सोलह-सत्रहवें मन्त्र में यह विषय ज्यों का त्यों लिखा हुआ है) ॥१–२॥

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
सर्वाधारं सदानन्दमव्यक्तं द्वैत वर्जितम् ॥३॥
सर्वोपमान रहितं प्रमाणातीत गोचरम्।
निर्विकल्पं निराभासं सर्वावासं परामृतम् ॥४॥
अभिन्नं भिन्नसंस्थानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्।
निर्गुणं परमं ज्योतिस्त ज्ज्ञानं सूरयो विदुः ॥५॥

भाषार्थ– समस्त इन्द्रियों तथा गुणों का प्रकाशक आत्मा है, तथा समस्त इन्द्रियों से रहित भी है, सब का– अधिष्ठान सदा आनन्द स्वरूप अव्यक्त तथा द्वैत से रहित है। उसकी कोई भी उपमा नहीं है, तथा

लौकिक प्रमाणों से उसको नहीं जाना जा सकता, श्रुति भी ऐसा ही कहती है– "सदैव सोम्येदमग्र आसीदेक मेवाद्वितीयत्"

(छा० उ० ६–२–१)

अर्थात्– इस नाम रूपात्मक जगत् के उत्पन्न होने के पहले केवल एक द्वैत वर्जित आत्म तत्त्व ही सत् रूप में था। इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रौत सिद्धान्त अद्वैत ही है। कोई कोई द्वैतवाद को भी वैदिक सिद्धान्त बताते हैं, परन्तु वह निर्मूल है। 'न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः' (यजुर्वेद अ० ३२ मं० ३) अर्थात् उस महान् यश वाले परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं है। प्रतिमा का अर्थ यहां– उपमा का है, इसलिये श्लोक में "सर्वोपमानं रहितं" पद दिया गया है। कोई कोई मूर्ति पूजन के निषेध में इस मन्त्र को लगाते हैं, परन्तु वह अर्थ सम्प्रदाय विरुद्ध एवं अप्रासंगिक है। परमात्मा का प्रधान स्वरूप निर्विकल्प, अन्य पदार्थों के आभासों से रहित, परम अमृत स्वरूप तथा सब में व्यापक रूप से रहने वाला है। सबसे अभिन्न रहता हुआ भी उसे विद्वान भिन्न स्थिति वाला, सनातन, अचल, - अव्यय, ज्योति स्वरूपात्मक बताते हैं॥ ३–५॥

स आत्मा सर्व भूतानां सबाह्याभ्यन्तरः परः।
सोऽहं सर्व्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः ॥६॥
मया ततमिदं विश्वं जगत् स्थावर जङ्गमम्।
मत्स्थानि सर्व्वभूतानि यस्तं वेद विदो विदुः ॥७॥

भाषार्थ– वही आत्मा समस्त भूतों के अन्तर बाहर सर्वत्र स्थित है, वही अहं पद का वाच्य है। शान्त, ज्ञान स्वरूपवाला उसे परमेश्वर भी कहा जाता है। श्री कैलाशनाथ मुनियों को सम्बोधित करके कहते हैं कि जितने स्थावर—जङ्गम स्वरूपात्मक जगत् के पदार्थ हैं, उन्हे मैंने व्याप्त कर रक्खा है। जितने भूत हैं, सब मेरे ही अन्दर विद्यमान हैं। इसे ज़ो इस प्रकार जानते हैं, उन्हे ही वेद वेत्ता कहना चाहिये, इससे विपरित ज्ञान को जो कथन करते हैं, वे अज्ञानी हैं॥ ६–७॥

प्रधानं पुरुषञ्चैव तद्वस्तु समुदाहृतम् ।
तयोरनादि रुद्दिष्टः कालः संयोगजः परः ।।८।।
त्रय मे तदनाद्यन्तमव्यक्ते समवस्थितम् ।
तदात्मकं तदन्य त्स्यात्तद्रूपं मामकं विदुः ।।९।।
महदाद्यं विशेषान्तं सम्प्रसूतेऽखिलं जगत् ।
यासा प्रकृति रुद्दिष्टा मोहनी सर्व देहिनाम् ।।१०।।

भाषार्थ– प्रकृति और पुरुष इन दोनों तत्वों के ही कारण भाव से जगत् की उत्पत्ति होती है । इन दोनों पदार्थों के अनादि संयोग से काल नामक पदार्थ की उत्पत्ति होती है । ये तीनों पदार्थ आदि अन्त रहित ब्रह्म में स्थित रहते हैं । ये ब्रह्म स्वरूप वाले ही हैं । कार्यावस्था में इनकी भिन्नाकार से जो प्रतीति हो रही है, इसे भी विद्वान लोग हमारा ही स्वरूप समझते हैं । महतत्त्व से लेकर स्थूल जगत् पर्यन्त जो उत्पन्न करती है, उसे प्रकृति कहते हैं, जो समस्त प्राणियों को मोहित करने वाली है ।।८–१०।।

पुरुष: प्रकृतिस्थो वै- भुङक्ते यः प्राकृतान् गुणान् ।
अहङ्कार विमुक्तत्वात्प्रोच्यते पञ्चविंशकः ।।११।।
आद्यो विकारः प्रकृतेर्महानिति च कथ्यते ।
विज्ञातृ शक्ति विज्ञानात् ह्यहङ्कारस्तदुत्थितः ।।१२।।

भाषार्थ– प्रकृति में स्थिति होकर पुरुष प्रकृति के सत्व, रजः, तमः, आदि गुणों के कार्यों का उपभोग करता है जब अहंकार से विमुक्त हो जाता है, तब केवल शुद्ध स्वरूप वाला हो जाता है । उसे ही सांख्य शास्त्र में प्रकृति के चौबीस प्रकारों से भिन्न पच्चीसवां तत्त्व माना गया है । प्रकृति के सबसे प्रथम विकार को महतत्व कहते हैं । विज्ञातृ शक्ति वाली बुद्धि या महतत्व से अहंकार पैदा होता है ।।११–१२।।

एकमेव महानात्मा सोऽहङ्कारोऽभिधीयते ।
स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्वचिन्तकैः ॥१३॥
तेन वेदयते सर्व्वं सुखं दुःखञ्च जन्मसु ।
स विज्ञानात्मकस्तस्य मनः स्यादुपकारकम् ॥१४॥
ते नापि तन्मयस्तस्मात् संसारः पुरुषस्यतु ।
स चाविवेकः प्रकृतौ संगात्कालेन सोऽभवत् ॥१५॥

भाषार्थ– वही महान् आत्मा अहंकार कहा जाता है, वही जीव अन्तरात्मा कहा जाता है, ऐसा निश्चय तत्वज्ञ पुरुषों ने ठहराया है । इसी कारण से नाना प्रकार की योनियों में सुख दुःख का अनुभव करने वाला है उस विज्ञान आत्मा का संसार के सुख-दुःखों के अनुभव में मन उपकारक है । उसके साथ तन्मयता प्राप्त करके पुरुष को सन्सारावस्था प्राप्त होती है । इसे ही अविवेक कहते हैं । प्रकृति में काल के साथ संगत्व प्राप्त होने पर इन सब बातों कि उत्पत्ति होती है ॥ १३।१५॥

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
सर्व्वेकालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे ॥१६॥
सोऽन्तरा सर्वमैवेदं नियच्छति सनातनः ।
प्रोच्यते भगवान् प्राणः सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः ॥१७॥

भाषार्थ- काल ही समस्त भूतों का उत्पन्न करने वाला और संहार करने वाला है । समस्त प्राणी काल के ही वशीभूत हैं; काल किसी के भी वश में नहीं है । इन सब नाम रूपात्मक वस्तुओं की कुछ अपेक्षा न रखते हुये काल स्वयं समस्त वस्तुओं का नियामक है, उसे ही सनातन, समस्त ऐश्वर्य युक्त सर्वज्ञ पुरुषोत्तम, तथा प्राण कहते हैं । ॥१६–१७॥

सर्व्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन आहुर्मनीषिणः ।
मनसश्चाप्यहङ्कारमहङ्कारान्महान्परः ॥१८॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषाद्भगवान् प्राणास्तस्य सर्व्वमिदं जगत् ॥१९॥

प्राणात्परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः ।
सोऽहं ब्रह्मानाव्ययः शान्तो मायातीतमिदं जगत् ॥२०॥

भावार्थ– विद्वान लोग समस्त इन्द्रियों से परे मन को बतलाते हैं। मन से परे अहंकार, और अहंकार से परे महतत्व, महतत्व से परे अव्यक्त, अव्यक्त से परे पुरुष है। पुरुष से परे प्राण (सूत्रात्मा) है उसी के अधीन यह जगत संचालित हो रहा है। प्राण के भी परे व्योम है, और व्योम के परे सर्व से अग्रणी अपर भाग में विद्यमान ईश्वर है, सो मैं हूं। उसे ब्रह्म, विकार से शून्य, शान्त मायातीत रूप से वेद में प्रति-पादित किया गया है। उस अवस्था में यह जगत् भी मायातीत स्वरूपात्मक ही है। संक्षेप में वेद के कई एक मन्त्रों का रहस्य इन श्लोकों में कहा गया है, जिनका उल्लेख प्रमाण रूप में इस प्रकार किया जाता है। "इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धि र्बुद्धेरात्मा महान् परः॥ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः। पुरुषान्नपरं किंचित् सा काष्ठा सापरा गतिः।" (कठो प० अ० १ मं० १०–११) अर्थ स्पष्ट है॥ १८।१९।२०॥

नास्ति मत्तः परं भूतं माञ्च विज्ञाय मुच्यते ।
नित्यं नास्तीति जगति भूतं स्थावर जङ्गमम् ॥२१॥
ऋते मामेव मव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम् ।
सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदा जगत् ॥२२॥
मायी माया मयो देवः कालेन सह सङ्गतः ।
मत्सन्निधावेष कालः करोति सकलं जगत् ।
नियोजयत्यनन्तात्मा ह्येतद्वेदानुशासनम् ॥२३॥

भावार्थ— इससे परे नित्य और कोई पदार्थ नहीं है। स्थावर जङ्गम जितने पदार्थ हैं, केवल एक व्योम स्वरूप महेश्वर और अव्यक्त स्वरूप वाले हमको छोड कर अर्थात् आत्मा सत्य है, उससे भिन्न समस्त जगत् मिथ्या है। मैं ही अपनी माया शक्ति के द्वारा काल से संगत

होकर जगत् को उत्पन्न करके इसकी स्थिति कर रहा हूं, तथा अन्त में सबको लय भी कर लेता हूँ। हमारी ही संनिधि से काल समस्त जगत् को उत्पन्न करता है, वही अनन्तात्मा स्वरूप वाला सबको यथा तथ्य रूप में नियुक्त भी करता है। यही वेद का इस विषय में अनुशासन है ॥२१-२३॥

इति श्रीकूर्म्म पुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वर गीता सूपनिषत्सु
हिन्दी अनुवाद युक्तासुब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे
ऋषि व्यास सम्बादे तृतीयो अध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्याय

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिनः ।
महात्म्यं देव देवस्य येन सर्व प्रवर्त्तते ।।१।।
नाहं तपोभिर्विविधैर्नदानेनन चेज्यया ।
शक्याहि पुरुषैर्ज्ञातुमृतेभक्तिमनुत्तमाम् ।।२।।

भाषार्थ– हे ब्रह्म वेत्ता मुनिगण ! देवादि देव परमात्मा की महिमा का मैं वर्णन करता हूँ, जिससे समस्त जगत् प्रवृत्ति कर रहा हैं, उसे सावधान चित्त से आप सब श्रवण करें । मैं नाना प्रकार की तपस्याओं से तथा विविध प्रकार के दान एवं यज्ञों से पुरुषों को ज्ञात नहीं होता हूँ, प्रत्युत उत्कृष्ट भक्ति ही हमारे स्वरूप के परिज्ञान में हेतु है ।।१-२।।

अहं हि सर्व भूतानामन्तस्तिष्ठामि सर्वतः ।
मां सर्व साक्षिणं लोको न जानाति मुनीश्वराः ।।३।।
यस्यान्तरा सर्वमिदं योहि सर्वान्तकः परः ।
सोहं धाता विधाता च कालोग्निर्विश्वतोमुखः ।।४।।

भाषार्थ– हे मुनीश्वरो ! मैं ही समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में सर्वतो भाव से स्थित हूं । जिस परमात्मा के ही अन्तर्गत यह समस्त दृश्यमान जगत् नाना प्रकार से चेष्टा युक्त दिख रहा है, और जो सब का अन्त में विनाशक भी है, वही मैं हूं । धाता, विधाता, काल, विश्वतोमुख, और अग्नि आदि हमारी ही संज्ञा है । ।।३–४।।

न मां पश्यन्ति मुनय : सर्वे पितृदिवौकसः ।
ब्रह्मा च मनवः शक्रो ये चान्ये प्रथितौजसः ।।५।।
गृणन्ति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम् ।
यजन्ति विविधैर्यज्ञैर्ब्राह्मणा वैदिकैर्मखैः ।।६।।

सर्वलोका नमस्यन्ति ब्रह्मा लोक पितामहः ।
ध्यायन्ति योगिनो देवं भूताधिपतिमीश्वरम् ।।७।।

भावार्थ– हे ऋषियों ! पितृ देवता, मुनि, ब्रह्मा, इन्द्र, मनु आदि विस्तृत पराक्रम वाले भी हमारे स्वरूप को यथार्थ रूप में नहीं देख सकते हैं। वेद सदैव हमको एक तथा परमेश्वर रूप वाला प्रतिपादन करते हैं। "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋ० सं० अ० १०-१७-७२) अर्थात् वेद पारग ब्राह्मण नाना प्रकार के वैदिक यज्ञों से हमारी पूजा करते हैं। जितने जन समुदाय हैं, वे सब हमें ही नमस्कार करते हैं। तीनों लोक के पितामह ब्रह्मा जी तथा योगीश्वर गण भूतादि, ईश्वर स्वरूप वाले, परमात्मदेव का ध्यान करते हैं, अर्थात् मैं ही सर्वोत्कृष्ट हूँ ।। ४–७ ।।

अहं हि सर्व हविषां भोक्ता चैव फलप्रदः ।
सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्व संप्लुतः ।।८।।
माम् पश्यन्तिहि विद्वांसो धार्मिका वेदवादिनः ।
तेषां सन्निहितो नित्यं ये मां नित्यमुपासते ।।९।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या धार्मिकामामुपासते ।
तेषां ददामि तत्स्थानमानन्द परमं पदम् ।।१०।।

भावार्थ– ब्राह्मी स्थिति रूप से श्री शंकर जी कहते हैं हे मुनियो ! मैं ही यज्ञ में हवन की हुई समस्त आहुति द्रव्यों का भोक्ता हूँ, तथा जिन २ कामनाओं के वशीभूत हो जो कर्म में निरत होते हैं, उनके फलों का मैं दाता हूं। समस्त देवताओं के स्वरूप में मैं ही नाना प्रकार के शरीरों का धारण करके स्थित हूं। मैं सब का आत्मा हूँ। सब में छिपे हुए रूप में रहता हूं। वेदवादी धार्मिक विद्वान् ही मुझे देख सकते हैं। जो मेरी उपासना करते हैं मैं उनके सर्वदा समीप में रहता हूं। जो धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हमारी उपासना करते हैं, मैं उनको आनन्दमय परम पद प्रदान करता हूँ ।।८–१०।।

अन्येऽपि ये स्वधर्मस्थाः शूद्राद्या नीचजातयः ।
भक्तिमन्तः प्रमुच्यन्ते कालेनापि हि संगताः ॥११॥
मद्भक्ता न विनश्यन्ति मद्भक्ता वीतकल्मषाः ।
आदावेव प्रतिज्ञातं नमे भक्तः प्रणश्यति ॥१२॥
यो वै निन्दन्ति तं मूढो देव देवं स निन्दति ।
योहि पूजयते भक्त्या स पूजयति मां सदा ॥१३॥

भावार्थ– इन पूर्वोक्त तीनों वर्णों से भिन्न जो नीच शुद्र वर्ण के हैं, वे भी भक्ति युक्त होकर स्वधर्म पालन में तत्पर होते हुये, समय आने पर मुक्ति के भागी हो जाते हैं। हमारे भक्त कभी भी विनाश भाव को नहीं प्राप्त होते, क्योंकि वे वीतकल्मष अर्थात् पाप रहित हैं। मैंने पहले ही कह दिया है कि मेरे भक्त कभी भी नष्ट नहीं होते। जो कोई मूढ़ मेरे भक्तों की निन्दा करते हैं वे साक्षात् देवाधिदेव परब्रह्म की निन्दा करते हैं। जो कोई उनकी पूजा करते हैं वे मेरी ही पूजा करते हैं– ऐसा निश्चय समझो आत्मज्ञ पुरुष की पूजा का महात्म्य– उपनिषद भी कहती है कि "तस्मादात्मज्ञं ह्यर्च्चयेद् भूति कामः" (मु० उ० ३–१–१२) अर्थात् ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को चाहिए कि ब्रह्मवेत्ता ईश्वर परायण पुरुषों की सेवा किया करें, तथा पाखण्डी – धूर्तों की सेवा से पराङ्मुख रहें ॥ ११–१३ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधन कारणात् ।
यो मे ददाति नियतं स मे भक्तः प्रियोमम ॥१४॥

भाषार्थ– जो कोई भक्त पुरुष हमारे लिये श्रद्धा से पत्र, पुष्प फल और जल को ही प्रदान करता है वह भक्त मुझे बहुत ही, प्रिय है ॥१४॥

अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
विधयेदत्तवान्वेदानशेषानात्मनिः सृतान् ॥१५॥

अहमेव हि सर्व्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः।
धार्मिकाणाञ्च गोप्ताहं निहन्ता वेद विद्विषाम् ॥१६॥

भावार्थ– सब से पहले मैं ही ब्रह्मा को उत्पन्न करता हूँ तथा उन्हें समस्त आत्मनिःसृत वेदों का परिज्ञान कराता हूँ। मैं ही समस्त योगियों का गुरू हूं तथा समस्त धर्म में तत्पर रहने वाले धार्मिक पुरुषों का रक्षक और वैदिक धर्म के शत्रुओं का नाश करने वाला हूँ। "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाञ्च प्रहिणोति तस्मै" (श्वे० उ० अ०-९ मं० १०) अर्थात्– परमात्मा ही सर्ग के आदि में ब्रह्मा को उत्पन्न करके उनको समस्त वेदों का परिज्ञान कराता है। 'सर्वेषामपि गुरु काले नानवच्छेदात् (यो० द० पा० १ सू० २६) अर्थात्– पूर्व में उत्पन्न हुए ब्रह्मा तथा अन्य समस्त ऋषियों को वेद का ज्ञान प्रदान करने से तथा उनके द्वारा वैदिक सम्प्रदाय प्रवृत करने से परमात्मा गुरु है ॥ १५–१६ ॥

अहं हि सर्व संसारान्मोचको योगिनामिह।
संसार हेतुरेवाहं सर्व संसार वर्जितः ॥१७॥
अहमेवहि संहर्ता संस्रष्टा परिपालकः।
माया वै मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहिनी ॥१८॥
ममैव च पराशक्तिर्यासा विद्येति गीयते।
नाशयामिच तां मायां योगिनां हृदि संस्थितः ॥१९॥

भावार्थ– मैं ही जन्म-मरण रूप संसार से योगियों को छुड़ाता हूं। संसार का कारण मैं हूँ और संसार रहित भी मैं हूं। मैं ही संहारकर्ता हूँ। मैं ही उत्पन्न करने वाला और रक्षा करने वाला हूं। लोक को मोहित करने वाली त्रिगुणात्मक स्वरूप वाली प्रकृति या माया मेरी शक्ति है। तथा परा शक्ति जिसे विद्या कहते हैं मेरे ही अधीन है। उससे मैं योगियों के हृदय में स्थित होकर नाना प्रकार के जन्म-मरण रूप दुःख को प्रदान करने वाली माया का नाश कर देता हूं ॥ १७–१९॥

अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्त्तक निवर्त्तकः ।
आधार भूतः सर्व्वासां निधानममृतस्यच ॥२०॥
एका सर्वान्तरा शक्तिः करोति विविधं जगत् ।
आस्थाय ब्रह्मणोरूपं मन्मयी मदधिष्ठिता ॥२१॥
अन्या च शक्तिर्विपुला संस्थापयति मे जगत् ।
भूत्वा नारायणोऽनन्तो जगन्नाथो जगन्मयः ॥२२॥
तृतीया महती शक्तिर्निहन्ति सकलं जगत् ।
तामसी मे समाख्याता कालाख्या रुद्र रूपिणी ॥२३॥

भाषार्थ– मैं ही समस्त शक्तियों का आधार तथा प्रवर्तक और निवर्त्तक हूँ। अमृत पद मोक्ष का निधान– अर्थात् मूल स्थान हूँ। उन सम्पूर्ण शक्तियों में से एक शक्ति हमारा आश्रय लेकर, तन्मय होकर ब्रह्मा के स्वरूप में सर्व जगत् के अन्तस्तल में स्थिति हो नाना प्रकार की सृष्टि बनाती है। इससे दूसरी शक्ति विष्णु स्वरूप वाली है, जो इस जगत् का पालन करती है, जिसे नारायण, अनन्त, जगन्नाथ और जगन्मय भी कहते हैं। हमारे इस जगत् के पालन कार्य में यह शक्ति पूर्णरूप से समर्थ है। इन दोनों शक्तियों से भिन्न तीसरी एक महान् शक्ति जो अन्त समय में समस्त जगत् को नाश कर देती है, जिसे रुद्ररूप वाली काल कहते हैं। यह शक्ति तामसी है और पूर्वोक्त दोनों शक्तियाँ क्रमशः रजोगुणी एवं सत्व गुणी हैं। यह तीनों शक्तियाँ जगत् के उत्पत्ति स्थिति और संहार में अपना अपना कार्य संचालन करती रहती हैं। इनसे परे तत्वात्मक ब्रह्म है, जिसे "शिव" कहतें हैं। उसी के ये आधीन रहती हैं।।२०–२३॥

ध्यानेन मां प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे ।
अपरे भक्ति योगेन कर्म योगेन चापरे ॥२४॥
सर्व्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतमो मम ।
योहि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा ॥२५॥

भाषार्थ– कोई ध्यान–योग, कोई ज्ञान–योग, कोई भक्ति–योग और कोई अभ्यास–योग से मेरे स्वरूप को देखते हैं। इन सब भक्तों में जो ज्ञान–योग द्वारा मेरा आराधना करतें हैं, वे मुझको अधिक प्रिय हैं। क्योंकि ज्ञानी की मेरे स्वरूप से अन्यथा वृत्ति ही नहीं होती ॥२४–२५॥

अन्ये चहरये भक्ता मदाराधनकारिणः ।
तेपि मां प्राप्नुवन्त्येव ना वर्त्तन्ते च वै पुनः ॥२६॥
मया ततमिदं कृत्स्नं प्रधानं पुरुषात्मकम् ।
मय्येव संस्थितं चित्तंमया सम्प्रेर्यते जगत् ॥२७॥

भाषार्थ– इनसे भिन्न जो विष्णु शक्ति के आराधक हैं, वे भी मेरी ही आराधना करने वाले हैं, क्योंकि विष्णु की आराधना से अन्तःकरण को शुद्ध करते हुये वे मेरे ही स्वरूप को प्राप्त करते हैं, और पुनः संसार में जनन-मरण रूप भय को नहीं प्राप्त होतें हैं। जितना प्रकृति पुरुषात्म जगत् है, उसे मैंने व्याप्त कर रक्खा है। मेरे ही अन्दर चित्त स्थित है। मैं ही समस्त जगत् को प्रेरित करता रहता हूँ ॥ २६–२७॥

नाहं प्रेरयिता विप्राः परमं-योगमास्थितः ।
प्रेरयामि जगत् कृत्स्नमेतद्यो वेद सोऽमृतः ॥२८॥
पश्याम्यशेष मेवेदं वर्तमानं स्वभावतः ।
करोति कालो भगवान् महायोगेश्वरः स्वयम् ॥२९॥

भावार्थ– परम योग अर्थात् एकत्व भाव का आश्रयण करने पर मैं किसी भी कार्य का प्रेरक नही हूँ। हे ब्राह्मणो ? जब यह कार्यरूप में विद्यमान जगत् है, तब इसका मैं प्रेरक हूँ। जो यह जानता है वह अमृत भाव को प्राप्त करता है। स्वभाव से ही वर्तमान इस समस्त जगत् को मैं देखता हूँ। स्वयं महायोगेश्वर भगवान काल इस जगत् को बनातें हैं। इसका भाव पूर्व में कहे गये काल तत्व के साथ सम्बन्ध रखता है ॥२८–२९॥

योऽहं सम्प्रोच्यते योगी मायी शास्त्रेषु सूरिभिः ।
योगीश्वरोऽसौ भगवान्महादेवो महाप्रभुः ॥३०॥

महत्वं सर्व सत्वानां वरत्वात् परमेष्ठिनः ।
प्रोच्यते भगवान् ब्रह्मा महाब्रह्ममयोऽमलः ॥३१॥
यो मामेवं विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम् ।
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥३२॥

भावार्थ- मुझे ही विद्वान लोग शास्त्र विषयों में योगी तथा माया-पति के नाम से प्रतिपादन करते हैं। वह परब्रह्म "अहं" पद का लक्ष्य स्वयं समस्त ऐश्वर्य वाला योगियों का ईश्वर महान् देव तथा महाप्रभु है। सब प्राणियों में श्रेष्ठ होने से तथा उच्च पद में स्थिति से भगवान् को 'ब्रह्मा' कहा जाता है। क्योंकि वह महाब्रह्ममय एवं निर्मल स्वरूप वाला है। श्री शंकर जी मुनियों से कहते हैं कि, जो कोई महायोगेश्वरों का भी ईश्वर मुझे जानता है वह निश्चल योग से युक्त हो जाता है। इस विषय में किंचित् मात्र संशय नहीं है॥ ३०-३२॥

सोऽहं प्रेरयिता देवः परमानन्दमाश्रिताः।
नृत्यामि यो सततं यस्तद्वेद स योग वित् ॥३३॥
इति गुह्यतमं ज्ञानं सर्व वेदेषु निश्चितम् ।
प्रसन्नचेतसे देयं धार्मिका याहिताग्नये ॥३४॥

भावार्थ- मैं समस्त वस्तुओं में प्रेरक रूप से हूँ, तथा मैं ही परमानन्द रूप का आश्रय करके नृत्य करता हूँ। इस प्रकार जो योगी मेरे दिव्य स्वरूप को जानता है, वही योग विद्या का जानने वाला है। इस प्रकार अत्यन्त गुह्यतम ज्ञान, जो समस्त वेदों में एक प्रकार से ही निश्चित है, मैंने आप सबको सुनाया। इसे प्रसन्न चित्त वाले धार्मिक तथा अग्नि कार्य करने वाले अधिकारी को ही आप सब प्रदान करना, अन्य को नहीं, क्योंकि ऐसा करने पर विद्या निष्फल नहीं होती।

इति श्री कूर्म्मपुराणे उ० ईश्वरगीता सूपनिषत्सु हिन्दी अनुवाद विभूषितासु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे ऋषि व्यास सम्वादे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्री व्यास उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान्योगिनां परमेश्वरः ।
ननर्त्त परमं भावमैश्वरं सम्प्रदर्शयन् ॥१॥
तं तेददृशुरीशानं तेजसां परमं निधिम् ।
नृत्यमानं महादेवं विष्णुना गगनेऽमले ॥२॥

भावार्थ – इतना उपदेश ऋषियों को सुना कर योगियों के परमेश्वर श्री भगवान् परमऐश्वर्य भाव को प्रदर्शित करते हुए नृत्य करने लगे। तेज के पुञ्ज विष्णु के साथ निर्मल गगन में नृत्य करते हुए महादेव को उन ऋषियों ने देखा ॥ १–२ ॥

यं विदुर्योगतत्वज्ञा योगिनो यत-मानसाः ।
तमीशं सर्व्वं भूतानामाकाशे ददृशुः किल ॥३॥
यस्य माया मयं सर्व्वं येनेदं प्रेर्यते जगत् ।
नृत्यमानः स्वयं विप्रैर्विश्वेशः खलु दृश्यते ॥४॥
यत्पाद पंकजं स्मृत्वा पुरुषोऽज्ञानजं भयम् ।
जहाति नृत्यमानन्तंभूतेशं ददृशुः किल ॥५॥

भावार्थ – संयम मन वाले योग तत्व के ज्ञाता योगी लोग, जिस परमतत्व को सम्यक् प्रकार से जानते हैं, उन्हीं समस्त भूतों के स्वामी को आकाश में सब ऋषियों ने देखा। जिस ईश्वर की माया का विलास यह समस्त जगत् है, जो सब के अन्तर्भाग में स्थित होकर प्रेरणा करता रहता है, उसी विश्व के स्वामी को सब ब्राह्मणों ने नृत्य करते हुए देखा। जिस परमात्मा के चरण कमल का स्मरण करके पुरुष अज्ञान से उत्पन्न होने वाले समस्त भयों से रहित हो जाता है उसी भूतेश जगदीश्वर को नृत्य करते हुये सबने देखा ॥३–५॥

केचिन्निद्रा जितश्वासाः शान्ता भक्तिसमन्विताः ।
ज्योतिर्म्मयं प्रपश्यन्ति स योगी दृश्यते किल ॥६॥
योऽज्ञानान्मोचयेत क्षिप्रं प्रसन्नोभवत वत्सलः ।
तमेवं मोचनरुद्रमाकाशे ददृशुः परम् ॥७॥
सहस्रशिरसं देवं सहस्रचरणावृतिम् ।
सहस्रवाहुं जटिलं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥८॥

भाषार्थ– कोई कोई संयमी पुरुष निद्रा श्वास को जीतकर शान्त भक्ति से समचित्त होते हुये स्वयं ज्योतिर्मय जिस परमात्मा को देखते हैं, वही योगी स्वरूप वाला तत्व आकाश में प्रदर्शित हुआ। उन्हीं प्रसन्न भक्तवत्सल तथा समस्त बन्धनों से छुडाने वाले देव को आकाश में देखा। जो शीघ्र ही अज्ञान से होने वाले समस्त भयों को निवृत्त कर देते हैं, उनका स्वरूप सहस्रों शिर वाला हजारों चरण की आकृतियों से युक्त तथा हजारों बाहुओं से सुशोभित जटा युक्त था और उनके मस्तक में द्वितीया का चन्द्रमा सुशोभित हो रहा था ॥६–८॥

वसानं चर्म्मं वैयाघ्रं शूलासक्त महाकरम् ।
दण्डपाणिं त्रयी नेत्रं सूर्य्य सोमाग्नि लोचनम् ॥९॥
ब्रह्माण्ड तेजसा स्वेन सर्व्वमावृत्यधिष्ठितम् ।
दंष्ट्रा करालं दुर्द्धर्षं सूर्य्य-कोटि-सम-प्रभम् ॥१०॥
सृजन्तमनलज्वालं दहन्तमखिलं जगत् ।
नृत्यन्तन्ददृशुर्देवं विश्वकर्म्माणमीश्वरं ॥११॥

भाषार्थ- व्याघ्र का चर्म धारण किये हुये एक हाथ में बडा त्रिशूल दूसरे में दण्ड लिये हुये, सूर्य, चन्द्र, अग्नि स्थानीय नेत्र वाले अपने तेज से समस्त ब्रह्माण्ड को आवृत करके अधिष्ठित, कराल दंष्टा वाले, दुर्धर्ष करोडों सूर्य के समान प्रभाव वाले, मुख से अग्नि की ज्वाला निकालते हुये तथा समस्त विश्व को भस्म करते हुये विश्व को रचने वाले जगदीश्वर को नृत्य करते हुये ऋषियों ने देखा ॥ ९–११ ॥

महादेवं महायोगं देवानामपि दैवतम् ।
पशूनां पतिमीशानं आनन्दं ज्योतिरव्ययम् ।।१२।।
पिनाकिनं विशालाक्षं भेषजं भवरोगिणाम् ।
कालात्मानं कालकालं देवदेवम् महेश्वरम् ।।१३।।
उमापतिं विशालाक्षं योगानन्दमयं परम् ।
ज्ञानवैराग्यनिलयं ज्ञान योगं सनातनम् ।।१४।।
शाश्वतैश्वर्य्यविभवं धर्म्माधारंदुरासदम् ।
महेन्द्रोपेन्द्र नमितं महर्षिगण वन्दितम् ।।१५।।
योगिनां हृदि तिष्ठन्तं योगमाया समावृतम् ।
क्षणेन जगतो योनिं नारायणमनामयम् ।।१६।।
दृष्ट्वा तदैश्वरं रूपं रुद्रं नारायणात्मकम् ।
कृतार्थंमेनिरे सन्तः स्वात्मानं ब्रह्मवादिनः ।।१७।।

भावार्थ– सब देवों में श्रेष्ठ महायोगी, देवताओं के भी देवता, जीवों के स्वामी, आनन्द स्वरूप, निर्विकार, ज्योतिः स्वरूप, धनुष को धारण किये हुये, विशाल नेत्र वाले, जन्म–मरण वाले रोगियों के भेषज स्वरूप, कालात्मक तथा काल के भी काल देवों के देव महेश्वर, ईशान, उमापति, विशाल ऐश्वर्य्य वाले, योगानन्द मय ज्ञान के आधार, ज्ञानयोग से वेद्य सनातन, नित्य ऐश्वर्य वाले विभु, समस्त धर्मों के आधार, तथा दुःख से जानने के योग्य, इन्द्र, विष्णु आदि से नमस्कृत, महर्षियों से वन्दनीय, योग माया से युक्त, एवं योगियों के हृदय में सर्वदा ज्योतिः स्वरूप से विराजमान तथा जगत् के कारण भगवान श्रीशंकर को और अनामय (व्याधि रहित) क्षण मात्र में ही ईश्वर के साथ ऐक्य भाव को नारायण के स्वरूप को स्वयं ब्रह्मवादियों ने देखा। इस प्रकार नारायणात्मक ईश्वरीय रूप वाले श्री रुद्रदेव को देखकर ब्रह्मवादी मुनियों ने अपने को कृतार्थ माना ।। १२–१७ ।।

सनत्कुमारः सनकोभृगुश्च सनातनश्चैव ।
सनन्दनश्च । रेभ्योऽङ्गिरा वामदेवोऽथ
शुक्रो महर्षिरत्रिः कपिलो मरीचिः ॥१८॥
ध्यात्वा हृदिस्थं प्रणिपत्य मूर्ध्नाकृत्वाञ्जलिं
स्वेषुशिरः सुभूयः ॥१९॥
ओङ्कारमुच्चार्य्य विलोक्य देवमन्तः शरीरं
निहतं गुहायाम् ॥ समस्तुवन् ब्रह्मवचोभिरा
नन्दपूर्णाहितमानसावै ॥२०॥

भाषार्थ– सनतकुमार, सनक, भृगु, सनातन, सनन्दन, रेभ्य, अंगिरा, वामदेव, शुक्र, महर्षि अत्रि, कपिल, मरीच आदि ऋषियों ने जगत् के स्वामी श्रीशंकर जी को एवं उनके वाम भाग में विराजित नारायण को देखकर तथा हृदय में ध्यान करके दोनों हाथों को जोडकर शिरप्रणति पूर्वक नमस्कार किया । ॐकार को उच्चारण करते हुये अन्तः शरीर में बुद्धि रूपी गुहा में छिपे हुये तत्व रूप परमात्मा को साक्षात् करके आनन्द पूर्ण मन वाले उन सब मुनियों ने वेद मय वचनों से स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥१८–२०॥

॥ मुनयः ऊचुः ॥

त्वामेक मीशं पुरुषं पुराणं प्राणेश्वरं रुद्रमनन्त योगम् ।
नमाम सर्वे हृदि सन्निविष्टं प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम् ॥२१॥
पश्यन्ति त्वां मुनयो ब्रह्मयोनिं दान्ताः शान्ताः विमलं रुक्मवर्णम् ।
ध्यात्वात्मस्थमचलं स्वे शरीरे कविं परेभ्यः परमं परञ्च ॥२२॥

भाषार्थ–सब मुनियों ने जिस प्रकार स्तुति की उसका निरूपण यहाँ से आगे इस अध्याय की समाप्ति तक किया जायगा । इसका आरम्भ इस प्रकार है । मुनियों ने श्री शंकर जी को सम्बोधित करके कहा, हे भगवान् आप एक ईश, पुराण पुरुष, प्राणों के ईश्वर, रुद्र, अनन्त योग, आदि नामों से वेद शास्त्रों में विख्यात हैं तथा सब के हृदय में आप

सन्निविष्ट एवं ब्रह्म मय पवित्र ज्ञान वाले हैं। आपको हम सब नमस्कार करते हैं। इन्द्रियों को दमन करने वाले शान्त मुनिगण आपके तप्त स्वर्ण के समान विमल स्वरूप तथा वेद के कारणात्म रूप को देखते हैं। आप सब वस्तुओं में क्रिया प्रदान करने वाले हैं, कविस्वरूप वाले हैं, एवं ब्रह्मा विष्णु आदि से भी परे स्वरूपात्मक रूप का अपने शरीर में ध्यान करने वाले हैं ।। २१–२२।।

त्वत्तः प्रसूता जगतः प्रसूतिः सर्वानुभूस्त्वं परमाणुभूतः ।
अणोरणीयान्महतो महीयांस्त्वामेव सर्व्वं प्रवदन्ति सन्तः ।।२३।।
हिरण्यगर्भो जगदन्तरात्मा त्वत्तोऽस्ति जातः पुरुषः पुराणः ।
सञ्जायमानो भवतेनिसृष्टो यथा विधानं सकलं स सद्यः ।।२४।।

भावार्थ– आप से ही जगत की उत्पत्ति होती है। आप ही समस्त वस्तुओं के अनुभावक तथा परमाणु स्वरूप वाले हैं। आप ही को सन्त लोग छोटे से भी छोटा और बड़े से भी बड़ा मानते हैं। एवं समस्त विश्व को आप ही का स्वरूप प्रतिपादित करते हैं। जगत के अन्तरात्मा हिरण्यगर्भ, जिन्हें पुराण भी कहते हैं, आप से ही उत्पन्न होते हैं, तथा उत्पन्न होकर आपकी आज्ञा के अनुसार समस्त वस्तुओं की रचना में प्रवृत्त होते हैं ।।२२–२४।।

त्वत्तोहि वेदा सकलाः प्रसूतास्त्वय्येवान्ते संस्थितिं ते लभन्ते ।
पश्यामस्त्वाञ्जगतो हेतुभूतं नृत्यन्तं स्वे हृदये सन्निविष्टम् ।।२५।।
त्वयैवेदं भ्राम्यते ब्रह्म चक्रं मायावीत्वं जगतामेक नाथः ।
नमामस्त्वां शरणं सम्प्रपन्नां योगात्मानं नृत्यन्तं दिव्यनृत्यम् ।।२६।।

भावार्थ– आप से ही समस्त वेद उत्पन्न होते हैं, और प्रलय काल में आपके ही अन्दर सन्निविष्ट हो जाते हैं। स्वयं हृदय स्थान में स्थित नृत्य करते हुये आप को हम सब जगत् का कारण समझते हैं। यह प्रत्यक्ष वर्ती ब्रह्मचक्र आपकी ही सत्ता से चल रहा है। आप ही इस माया कार्य जगत के स्वामी तथा माया के पति हैं। दिव्य नृत्य करने वाले

योगात्मा! आपको हम नमस्कार करते हैं एवं आपकी शरणागत हैं ॥२५—२६॥

पश्यामस्त्वां परमाकाश मध्ये नृत्यन्तं महिमानं स्मरामः ।
सर्व्वात्मानं बहुधा सन्निविष्टं ब्रह्मानन्दमनुभूयानुभूयः ॥२७॥
ओंङ्कारस्ते वाचको मुक्ति बीजं त्वमक्षरं प्रकृतौ गूढरूपम् ।
तत्त्वां सत्यं प्रवदन्तीह सन्तः स्वयम्प्रभं भवतो यत्प्रभावम् ॥२८॥

भाषार्थ– हे भगवन् ब्रह्मानन्द का अनुभव बारबार करके तथा अनेक रूप से सर्वत्र व्यापक परमाकाश में नृत्य करने वाले आपकी अपूर्व महिमा का स्मरण करते हुये हम सब आपके स्वरूप को देखते हैं। मुक्ति बीज ओंङ्कार आपका वाचक है। "तस्य वाचकः प्रणवः" (यो० द० पा० १ सू० २७) आप अक्षर अर्थात् अविनाशी हैं एवं प्रकृति के अन्दर छिपे हुये हैं। सन्त लोग यह सत्य ही कहते हैं कि आपका प्रभाव स्वयं प्रभ है, अर्थात पूर्ण स्वतंत्र केवल आप ही हैं ॥२७–२८॥

स्तुवन्ति त्वां सततं सर्व्ववेदा नमन्ति त्वामृषयः क्षीणदोषाः ।
शान्तात्मनः सत्यसन्धं वरिष्ठं विशन्ति त्वां यतयो ब्रह्मनिष्ठाः ॥
भुवो नाशो नादिमान्विश्वरूपो ब्रह्मा विष्णुः परमेष्ठीवरिष्ठः ।
स्वात्मानन्दमनुभूय विशन्ते स्वयं ज्योतिरचलानित्यमुक्ता ।३०।

भाषार्थ– समस्त वेद आपकी ही स्तुति करते हैं तथा क्षीण दोष वाले ऋषिगण भी शान्त मनवाले होते हुये आप को ही नमस्कार करते हैं। ब्रह्मनिष्ठ यतिगण भी सत्य संध सब से श्रेष्ठ आपके स्वरूप में ही प्रवेश करते हैं। इस विषय में श्रुति प्रमाण भी है। "परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद् यतयो विशन्ति" (कै० उ० १खं० मं० ३) अन्त समय भूमि आदि का नाश हो जाता है तथा यह समस्त विश्व, ब्रह्मा, विष्णु, परमेष्ठी आदि देवता गण भी अन्त समय में स्वात्मानन्द का अनुभव करके अचल भाव को प्राप्त हो स्वयं ज्योति स्वरूप में लीन होकर नित्य हो जाते हैं ॥२९–३०॥

एको रुद्रस्त्वं करोषीह विश्वं त्वं पालयस्यखिलं विश्वरूपं ।
त्वामेवान्ते निलयं विन्दतीदं नमामस्त्वां शरणं संप्रपन्नाः ।।३१।।
एको वेदो बहुशाखो ह्यनन्तस्त्वामेवैकं बोध यस्येक रूपम् ।
वन्द्यं त्वां ये शरणं संप्रपन्ना माया मेतां ते तरन्तीह विप्राः ।।३२।।

भाषार्थ— आप एक होते हुए भी इस विश्व को उत्पन्न करते हो तथा विश्वरूप से सबका पालन करते हो, और अन्त में आप में ही यह समस्त विश्वलय को भी प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार विद्वान लोग जानते हैं, ऐसे स्वरूप वाले हम लोग आपके शरण में प्राप्त हुए हैं अनन्त शाखा वाला वेद भी आपको एक रूप से बोधन करता है, जो ब्राह्मणगण वन्दनीय आपकी शरण में आते हैं, वे इस-संसार के कारण-भूत माया को तर जाते हैं ।।३१-३२।।

त्वामेकमाहुः कविमेक रुद्रं ब्रह्म गृणन्तं हरिमग्निमीशं ।
रुद्रं नित्यमनिलं चेकितानं धातारमादित्यमनेकरूपम् ।।३३।।
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परंनिधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्म्मगोप्ता सनातनस्त्वंपुरुषोत्तमोऽसि ।।३४।।

भाषार्थ – विद्वान लोग आपको एक, कवि, रुद्र, ब्रह्मा, हरि, अग्नि, ईश, रुद्र, नित्य, अनित्य, चेकितान धाता, आदित्य आदि नामों से अनेक रूप वाले बतलाते हैं। अक्षर रूप से आप ही वेदितव्य कहे गये हैं। आप ही इस विश्व के परम निधान हैं। आप विकार शून्य हैं, और सनातन धर्म के रक्षक है। आप स्वयं सनातन एवं पुरुषोत्तम भी हैं ।।३३-३४।।

त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव रुद्रो भगवानपीशः ।
त्वं विश्वनाथः प्रकृतिः प्रतिष्ठा सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि ।३५।
त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
चिन्मात्रमव्यक्तमनन्तरूपं खं ब्रह्म शून्यं प्रकृतिर्निर्गुणश्च ।।३६।।

भावार्थ– हे भगवन् ! आप ही ब्रह्म, विष्णु और रुद्र रूप वाले हैं। आप विश्व के स्वामी हो, तथा सब के मूल कारण सर्वेश्वर एवं परमेश्वर भी हो। आप को ही सारे वेद पुराण, पुरुष, आदित्य वर्ण वाला, तथा तम से परे चिन्मात्र, अव्यक्त अनन्त रूपवाला खं ब्रह्म, प्रकृति, और निर्गुण स्वरूप वाला कहते हैं ।।३५–३६।।

यदन्तरा सर्वमिदं विभाति यदव्ययं निर्मलमेक रूपम् ।
किमप्यचिन्त्यं तवतत्स्वरूपं तदन्तरा यत्प्रतिभाति तत्वम् ।।३७।।
योगेश्वरंभद्रमनन्तशक्ति परायणं ब्रह्म तनुं पुराणम् ।
नमामि सर्वे शरणार्थिनस्त्वां प्रसीद भूताधिपते महेश ।।३८।।

भावार्थ– हे महेश ! जिसके मध्य में यह नाम रूपात्मक जगत् प्रकाशित हो रहा है, जो निर्विकार, निर्मल एक रूपवाला, आपका कोई अचिन्त्य स्वरूप है, उसमें ही समस्त तत्वों की स्थिति है। हे समस्त भूतों के स्वामी ! हे योगियों के ईश्वर, कल्याण गुण विशिष्ट, अनन्त शक्ति वाले, परम उत्कृष्ट स्थान वाले, वृहत्–काय वाले, तथा सबसे पुरातन स्वरूप वाले आपको हम सब शरणार्थी नमस्कार करते हैं; आप हम सब पर प्रसन्न होवें ।।३७–३८।।

त्वद्धस्तपाद पद्म स्मरणादशेष-संसार-बीजं निलयं प्रयाति ।
मनो नियम्य प्रणिधाय कायं प्रसादयामो वयमेकमीशं ।।३९।।
नमोभवायाथ भवोद्भवाय कालाय सर्वाय हरायतुभ्यम् ।
नमोऽस्तु रुद्राय कपर्द्दिनेते नमोऽग्नये देव नमः शिवाय ।।४०।।

भावार्थ– मन को नियमन कर तथा शरीर के पृष्ठ भाग को समरूप में करके आप के चरण कमल के स्मरण से समस्त संसार के अनर्थ रूपात्मक बीज नाश भाव को प्राप्त हो जाते हैं। हे स्वामिन् ! हम सब आपको प्रसन्न करते हैं। हे जगत् के कारण स्वरूप वाले, विश्व के उत्पादक, कालरूप, सर्वहर, रुद्र, कपर्दी, अग्नि, शिव आदि नाम वाले, आपको हम सब बारम्बार नमस्कार करते हैं ।।३९–४०।।

ततः स भगवान्प्रीतः कपर्द्दी वृषवाहनः ।
संहृत्य परमं रूपं प्रकृतिस्थोऽभवद्भवः ॥४१॥
ते भवं भूत भव्येशं पूर्व्ववत्समवस्थितम् ।
दृष्ट्वा नारायणं देवं विस्मितं वाक्यमब्रुवन् ॥४२॥

भावार्थ– इस प्रकार मुनियों की स्तुति से प्रसन्न हो भगवान् शंकर अपने दिव्य रूप को छोड कर प्रकृतिस्थ हुये । वे मुनि लोग भूत, भविष्यत् , वर्तमान तीनों कालों के स्वामी श्री शंकर जी को नारायण के सहित पूर्व स्थान पर पूर्ववत् स्थित देख कर विस्मित वचन बोले ॥४१–४२॥

भगवन् भूत भव्येश गो वृषाङ्कित शासन ।
दृष्ट्वा ते परमं रूप निर्वृत्ताः स्मः सनातन ॥४३॥
भवत्प्रसादादमले परस्मिन्परमेश्वरे ।
अस्माकं जायते भक्ति स्त्वय्येवाव्यभिचारिणी ॥४४॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं तव शंकर ।
भूयोऽपि चैव यन्नित्यं याथात्म्यं परमेष्ठिनः ॥४५॥
सतेषां वाक्यमाकर्ण्य योगिनां योगसिद्धिदः ।
प्राह गम्भीरया वाचा समालोक्य च माधवम् ॥४६॥

भावार्थ– हे भगवन् आपके परम अद्भुत स्वरूप का दर्शन करके हम लोग परम सुख को प्राप्त हुये हैं । हे भूत भव्य के स्वामी तथा गोवृष से अङ्कित शासन एवं सनातन रूप वाले, आपके प्रसाद से आप निर्मल परम परमेश्वर के विषय में हम लोगों की नित्यभक्ति बनी रहे । अब हम लोग आपके महात्म्य के जो परम स्वरूप में स्थित तथा नित्य रूप में कहा गया है, सुनने की अभिलाषा करते हैं । कृपा कर उसे आप हम सबों को सुनाइये । इस प्रकार मुनियों के वचनों को सुनकर योगियों

को अनेक प्रकार की सिद्धि देने वाले श्री शंकर जी श्रीमाधव की ओर अवलोकन करते हुये गम्भीर वाणी से बोले ।।४३–४६।।

इति श्रीकूर्म पुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वर गीतासूपनिषत्सु
भाषानुवाद सहिता सुब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे
ऋषि व्यास सम्वादे पञ्चमोध्यायः ।।५।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे यथावत्परमेष्ठिनः ।
वक्ष्यामीशस्य माहात्म्यं यत्तद्वेदविदो विदुः ॥१॥
सर्वलोकैकनिर्माता सर्व्वलोकैक रक्षिता ।
सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वात्माहं सनातनः ॥२॥
सर्वेषामेव वस्तूनामन्तर्यामी महेश्वरः ।
मध्ये चान्तः स्थितं सर्व्वं नाहं सर्वत्र संस्थितः ॥३॥

भावार्थ– श्री शंकर भगवान् ने कहा– हे ऋषियो ! वेदवेत्ता गण जिस प्रकार से परम स्थान में विराजित ईश्वर का महात्म्य वर्णन करते हैं, उसे हम यथावत् यहां से आगे वर्णन करते हैं, आप सब– समाहित चित्त से श्रवण कीजिये । मैं ही समस्त लोकों का बनाने वाला, बनाकर सब की रक्षा करने वाला और अन्त समय में सबका विनाश करनें वाला हूँ; मैं ही सर्वात्मा, सनातन अन्तर्यामी तथा महेश्वर हूँ । यह जगत् मेरे ही अन्दर स्थित है । यह सर्वत्र विद्यमान नहीं है अर्थात्, चेतन स्वरूप वाला मैं तो व्यापक हूँ; जगत् एकदेशीय व्याप्य है ॥१–३॥

भवद्भिरद्भुतं दृष्टं यत्स्वरूपञ्च मामकम् ।
ममैषाह्युपमा विप्रा माया वै दर्शिता मया ॥४॥
सर्व्वेषामेव भावानामन्तरं समवस्थितः ।
प्रेरयामि जगत्कृत्स्नं क्रियाशक्तिरियं मम ॥५॥
मयेदं चेष्टते विश्वं तद्भावानुवर्ति मे ।
सोऽहं कालो जगत् कृत्स्नं प्रेरयामि कलात्मकम् ॥६॥

भावार्थ– आप सब महानुभावों ने जो मेरे स्वरूप का दर्शन किया है, वह सब मेरी माया का ही स्वरूप समझिये । हे ब्राह्मणो ! मैं ही समस्त भावों के अन्तर्भाग में स्थित होकर समस्त जगत् को प्रेरित करता हूँ, यही मेरी क्रिया शक्ति है । मुझ से ही यह नाम रूपात्मक भाव वाला समस्त विश्व चेष्टा कर रहा है । मैं ही कालस्वरूप से समस्त कालात्मक जगत् को प्रेरित करता हूँ ॥४–६॥

एकांशेन जगत्कृत्स्नं करोमि मुनिपुंगवाः ।
संहराम्येक रूपेण स्थितावस्था ममैवतु ॥७॥
आदि मध्यान्त निर्मुक्तो माया तत्व प्रवर्त्तकः ।
क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ ॥८॥
ताभ्यां सञ्जायते विश्वंसंयुक्ताभ्यां परस्परम् ।
महदादि क्रमेणैव मम तेजो विजृम्भते ॥९॥

भावार्थ– हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं अपने एक अंश से समस्त जगत् को बनाता हूं, एक अंश से स्थिति, और एक अंश से संहार करता हूं । आदि, मध्य, तथा अन्त से रहित माया तत्व का प्रवर्तक में सृष्टि के आदि में प्रधान (प्रकृति) और पुरुष इन दोनों में सृष्टि के लिये क्षोभनात्मक क्रिया उत्पन्न करता हूँ । जिन दोनों के संयोग से महद (अहंकार) आदि क्रम से यह समस्त विश्व उत्पन्न होता है, उन सब में हमारा ही तेज वृद्धि को प्राप्त हो रहा है ॥७–९॥

योहि सर्व्व जगत् साक्षी काल चक्र प्रवर्त्तकः ।
हिरण्य गर्भो मार्तण्डः सोऽपि मद्देह सम्भवः ॥१०॥
तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्य्यं ज्ञान-योगं सनातनम् ।
दत्तवानात्मवान्वेदान् कल्पादौ चतुरोद्विजाः ॥११॥
स मन्नियोगतो देवो ब्रह्मा मद्भाव भावितः ।
दिव्यं तन्मामकैश्वर्य्यं सर्व्वदावगतः स्वयम् ॥१२॥

भावार्थ– जो समस्त जगत् के साक्षी काल चक्र के प्रवर्तक हिरण्य गर्भ सूर्य हैं, वे भी मेरे अंश से प्रकट हुये हैं। हे ब्राह्मणो ! कल्प के आदि में ज्ञान योगात्मक सनातन दिव्य स्वकीय ऐश्वर्य तथा चारों-वेद मैं उन्हें प्रदान किया करता हूँ वह ब्रह्मदेव मेरी सत्ता से सत्तावान् होकर तथा मेरे नियोग से दिव्य ऐश्वर्य के स्वयं ज्ञाता होते हैं ॥१०–१२॥

स सर्व्वं लोक निर्माता मन्नियोगेन सर्व्ववित् ।
भूत्वा चतुर्मुखः सर्गं सृजत्येवात्म सम्भवः ॥१३॥
योऽपि नारायणोऽनन्तो लोकानां प्रभवोऽव्ययः ।
ममैव च परामूर्तिः करोति परिपालनम् ॥१४॥
योऽन्तकः सर्व्व भूतानां रुद्रः कालात्मकः प्रभुः ।
मदाज्ञयासौ सततं संहरिष्यति मेतनुः ॥१५॥

भावार्थ– सर्व वेत्ता होकर चतुर्मुख मुझ से उत्पन्न होकर मेरे ही शासन से इस सृष्टि को बनाते हैं। और मेरी ही प्रेरणा से उन्हें सर्व लोक का बनाने वाला कहा जाता है। इन से भिन्न नारायण, जिन्हें अनन्त, अविकारी एवं जगत् का कारण कहते हैं, और जो सबका पालन करते हैं, वह हमारी श्रेष्ठ मूर्ति है। जो समस्त प्राणियों के संहार करने वाले कालात्मक प्रभु रुद्र हैं, जो हमारी आज्ञा से सदैव संहार करते रहते हैं, वे मेरे ही स्वरूप हैं। अर्थात्–त्रिमूर्ति स्वरूप मेरा ही है ॥१३-१५ ॥

हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि ।
पाकञ्च कुरुते वह्निः सोऽपि मच्छक्तिनोदितः ॥१६॥
भुक्तमाहारजातञ्च पचते तदहर्निशम् ।
वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वरस्य नियोगतः ॥१७॥
योऽपि सर्व्वाम्भसांयोर्निवरुणोदेव पुङ्गवः ।
सोऽपि सञ्जीवयेत्कृत्स्नमीश्वरस्य नियोगतः ॥१८॥

भावार्थ– देवताओं के लिये हवनीय द्रव्य, पितरों के लिये कव्य, एवं समस्त पचनीय पदार्थों का पाक, जो अग्नि करता है, वह मेरी ही शक्ति से प्रेरित होता है। भोजन किये हुये आहार को जो रात दिन परिपक्क करने में निरत रहने वाले वैश्वानर भगवान् अग्नि हैं, वे भी मुझ ईश्वर से नियुक्त हैं। जो समस्त जल के कारण रूप देवताओं में श्रेष्ठ वरुणदेव हैं, वे भी समस्त प्राणियों को मुझ ईश्वर के ही नियोग से जीवन प्रदान करने में समर्थ हैं। अर्थात् वह्नि, वैश्वानर, अग्नि तथा वरुण भी ईश्वर के ही अधीन हैं ॥१६–१८॥

योऽन्तस्तिष्ठति भूतानां वहिर्देवः प्रभञ्जनः।
महाज्ञयासौभूतानां शरीराणि विर्भर्त्तिहि ॥१९॥
योऽपि सञ्जीवनोन्नृणां देवानाममृताकरः।
सोमः समन्नियोगेन नोदितः किलवर्त्तते ॥२०॥

यः स्वभासा जगत्कृत्स्नं प्रभासयति सर्व्वशः।
सूर्य्यो वृष्टिं वितनुते स्वोस्त्रेणैव स्वयम्भुवः ॥२१॥

भावार्थ– समस्त प्राणियों के अन्दर तथा बाहर जो प्रभञ्जनदेव (वायु) स्थित होकर समस्त प्राणियों के शरीरों को धारण करते हैं, वे भी मेरी आज्ञा के अधीन है। मनुष्यों के लिये सञ्जीवन और देवताओं के लिये अमृताकर जो सोमदेव हैं वह– हमारी नियुक्ति में ही विद्यमान हैं। जो अपनी किरणों से सर्वथा समस्त विश्व को भासित करने वाले हैं तथा जो समय पर अपनी किरणों में जल धारण करके वृष्टि करते हैं, वे सूर्य्यदेव भी मुझ स्वयम्भु के शासन के अन्दर ही हैं। इस भाव को श्रुति भी पुष्ट करती हैं। यथा–"तमेव भान्तमनुभाति सर्व्वंतस्य भासा सर्व्व मिदं विभाति" (क० उ० अ० २ व० ५ मं० १५) अर्थात्–सूर्य्य, चन्द्रमा, तारा गण, अग्नि आदि के प्रकाश से परमात्मा प्रकाशित नहीं है, प्रत्युत उसी से ये सब प्रकाशित होते हैं ॥१९–२१॥

योऽप्यशेष जगच्छास्ता शक्रः सर्व्वामरेश्वरः ।
यज्वनां फलदो देवो वर्त्तते स मदाज्ञया ।।२२।।
यः प्रशास्ता ह्यसाधूनां वर्त्तते नियमादि ह ।
यमो वैवस्वतो देवो देवदेव नियोगतः ।।२३।।
योऽपि सर्व्वधनाध्यक्षो धनानां सम्प्रदायकः ।
सोऽपीश्वर नियोगेन कुबेरो वर्त्तते सदा ।।२४।।

भावार्थ– जो समस्त जगत् का शासन करने वाले, समस्त देवताओं के स्वामी, तथा याजकों के फलों के देने वाले इन्द्र देव हैं, वह भी हमारे शासन के अधीन हैं । दुष्टों को दमन करने वाला तथा नियम का विधान करने वाला सूर्य पुत्र यम भी मुझ देवाधिदेव के नियोग से अपने व्यापार में तत्पर रहता है । समस्त धनों के अध्यक्ष तथा समस्त धनों को प्रदान करने वाले कुबेर भी मुझ ईश्वर के ही अधिकार में अपने कार्य करने में समर्थ हैं ।।२२–२४।।

यः सर्व रक्षसां नाथस्तामसानां फलप्रदः ।
मन्नियोगादसौ देवो वर्त्तते निर्ऋतिः सदा ।।२५।।
वेतालगण भूतानां स्वामी भोगफलप्रदः ।
ईशानः किलभक्तानां सोऽपि तिष्ठेन् मदाज्ञया ।।२६।।
यो वामदेवोऽङ्गिरसः शिष्योरुद्र गणाग्रणीः ।
रक्षको योगिनां नित्यं वर्त्ततेसमदाज्ञया ।।२७।।

भावार्थ– सव राक्षसों का स्वामी, तामस प्रकृति के साधकों के फलों का देने वाला निर्ऋति नामक देव भी मेरी ही सत्ता के अधीन है । वेताल गण भूतों का स्वामी, योग रूप फल का देने वाला, भक्तों पर अनुग्रह करने वाला ईशान देव भी मेरी आज्ञा में रहता है । अङ्गिरा के शिष्य रुद्रगणों में श्रेष्ठ नित्य योगियों की रक्षा करने वाले वाम देव मेरी ही आज्ञा में रहते हैं ।।२५–२७।।

यश्च सर्व्वं जगत्पूज्यो वर्त्तते विघ्ननायकः।
विनायको धर्मरतः सोऽपि मद्वचनात्किल ॥२८॥
योऽपि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो देवसेनापतिः प्रभुः।
स्कन्दोऽसौ वर्त्तते नित्यं स्वयम्भूर्विधिनोदितः ॥२९॥
ये च प्रजानांपतयो मरीच्याद्या महर्षयः।
सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैव नियोगतः ॥३०॥

भावार्थ––समस्त विघ्नों के स्वामी, धर्म रत सर्व जगत् के प्रथम पूज्य जो गणेश देव हैं, वह भी मेरे वचनों से ही नियुक्त हैं। जो ब्रह्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ देव सेना के स्वामी अत्यन्त प्रभाव वाले स्वयम्भू स्कन्द देव हैं, वे भी मेरी आज्ञा में ही हैं, मरीच आदि प्रजापति भी मुझ परमात्मा के नियोग से नाना प्रकार के लोकों की रचना में समर्थ है ॥ २८–३० ॥

या च श्रीः सर्व भूतानां ददाति विपुलांश्रियम्।
पत्नी नारायणस्यासौ वर्त्तते मदनुग्रहात् ॥३१॥
वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती।
सापीश्वर–नियोगेन पूजिता संप्रवर्त्तते ॥३२॥
या शेषपुरुषानघोरान्नरकान्तारयिष्यति।
सावित्री संस्मृता चापि मदाज्ञानुविधायिनी ॥३३॥

भावार्थ––जो समस्त प्राणियों को विपुल श्री अर्थात् नाना प्रकार की शोभा को प्रदान करने वाली विष्णु की पत्नी लक्ष्मी देवी हैं, वह भी मेरे अनुग्रह को प्राप्त कर ऐसा करने में समर्थ हैं। जो विद्यार्थियों को विशद वाणी प्रदान करने वाली सरस्वती देवी हैं, जो विद्या कामना वालों से पूजित हैं वह भी ईश्वर के नियोग में ही हैं। जो स्मरण करने से समस्त साधक पुरुषों को नरक–यातनाओं से मुक्त कर देती हैं, ऐसी सावित्री देवी भी मेरी आज्ञा के अधीन हैं ॥३१–३३॥

पार्व्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी ।
यापिध्याता विशेषेण सापि मद्वचनानुगा ॥३४॥
योऽनन्त महिमानन्तः शेषोऽशेषाभर प्रभुः ।
दधाति शिरसा लोकं सोऽपि देव नियोगतः ॥३५॥
योऽग्नि संवर्त्तको नित्यं वडवारूपसंस्थितः ।
पिवत्यखिलमम्भोधिमीश्वरस्य नियोगतः ॥३६॥

भावार्थ--ब्रह्म विद्या को देने वाली परमा देवी भगवती पार्वती जिनका ध्यान करने से साधक समस्त पुरुषार्थ को प्राप्त करता है, वह भी मेरे बचनों के ही अधीन हैं । जो अनन्त महिमा वाले भगवान् अनन्त शेष जी हैं, जो समस्त देवताओं के स्वामी हैं, वह भी मुझ परमात्मा के नियोग से समस्त विश्व को अपने मस्तक पर धारण करते हैं । जो प्रलय करने वाला अग्नि वडवारूप से समस्त समुद्र का पान कर रहा हैं, वह भी मुझ ईश्वर से नियुक्त है ॥३४-३६॥

ये चतुर्द्दश लोकेऽस्मिन्मनवः प्रथितोजसः ।
पालयन्ति प्रजाः सर्वास्तेऽपि तस्य नियोगतः ॥३७॥
आदित्य वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाश्विनौ ।
अन्याश्चदेवताः सर्वाः मच्छास्त्रेणैव निष्ठिताः ॥३८॥
गन्धर्वा गरुडाद्याश्च सिद्धाः साध्याश्व चारणाः ।
यक्ष रक्ष पिशाचाश्च स्थिताः सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥३९॥

भावार्थ--जो चौदहों लोकों में प्रथित पराक्रम वाले मनु हैं, तथा समस्त प्रजा का अनवरत जो पालन करते हैं, वे भी मुझ ईश्वर के अधीन हैं । द्वादश आदित्य, अष्ट वसु, एकादश रुद्र, मरुत अश्विनीकुमार तथा अन्य जितने देवता हैं सब मेरे शासन में स्थित हैं । गन्धर्व, गरुड, सिद्ध, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि जो निकृष्ट देव योनियां हैं, वे भी ईश्वर की आज्ञा से बनी हैं ॥३७-३९॥

कला काष्ठा निमेषाश्च मुहूर्त्ता दिवसाः क्षपाः ।
ऋतवः पक्ष मासाश्च स्थिताः शास्त्रे प्रजापते ॥४०॥
युग मन्वन्तराण्येव मम तिष्ठन्ति शासने ।
पराश्चैव परार्द्धाश्च कालभेदास्तथापरे ॥४१॥
चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
नियोगा देव्र वर्त्तन्ते देवस्य परमात्मनः ॥४२॥

भावार्थ--कला, काष्ठा, निमेष, मुहूर्त दिन, रात्रि, ऋतु, पक्ष, मास आदि सब मुझ प्रजापति के शासन में स्थित हैं। युग मन्वन्तर परार्द्ध आदि जितने काल के भेद हैं वे सब मेरे अधिकार में हैं। चारों प्रकार के अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज आदि जितने स्थावर, जङ्गमात्मक भूत हैं, वे सब मुझ परमात्म देव के ही नियोग में विद्यमान हैं ॥४०-४२॥

पातालानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात् ।
ब्रह्माण्डानि च वर्त्तन्ते सर्व्वाण्येव स्वयम्भुवः ॥४३॥
अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्माण्डानि समाज्ञया ।
प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समन्ततः ॥४४॥
ब्रह्माण्डानि भविष्यन्ति सहचात्मभिरात्मगैः ।
करिष्यन्ति सदैवाज्ञां परस्य परमात्मनः ॥४५॥

भावार्थ--समस्त पाताल, ब्रह्माण्ड, और जितने भुवन हैं, सब मुझ स्वयम्भु परमात्मा के ही शासन में विद्यमान हैं। पीछे अतीत काल में जितने ब्रह्माण्ड असंख्य संख्या में व्यतीत हो चुके हैं, वे भी सब नाना प्रकार के पदार्थों के साथ मेरी आज्ञा में विद्यमान थे। आगे भविष्य में भी जितने पदार्थ एवं प्राण-धारियों की सृष्टि होगी वे सब मुझ परमात्मदेव की ही आज्ञा में रहेंगे। अर्थात् तीनों कालों में ईश्वर की सत्ता एक सी ही रहती है ॥४३-४५॥

भूमि रापोऽनलो वायु: खं मनो वुद्धि रेवच ।
भूतादिरादि प्रकृतिर्नियोगे मम वर्त्तते ।।४६।।
या शेष जगतां योनिर्मोहिनी सर्व्वं देहिनाम् ।
माया विवर्त्तते नित्यं सापीश्वर नियोगतः ।।४७।।
यो वै देहभृतादेवः पुरुषः पठचते परः ।
आत्मासौ वर्त्तते नित्यमीश्वरस्य नियोगतः ।।४८।।

भावार्थ—भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और आदि प्रकृति ये सब मेरे शासन में विद्यमान हैं। जो समस्त जगत को मोहने वाली, तथा सब को उत्पन्न करने वाली माया है, वह भी मुझ ईश्वर के नियोग में है। जो देह धारियों के मध्य में द्योतनात्मक पुरुष जिसे कहा जाता है वह आत्मा भी मुझ ईश्वर के नियोग में विद्यमान है ।।४६-४८।।

विधूय मोहकलिलं यया पश्यति तत्पदम् ।
सापि बुद्धिर्महेशस्य नियोग वशवर्तिनी ।।४९।।
बहुनात्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत् ।
मय्यैव प्रेर्य्यते कृत्स्नं मय्येव प्रलयं व्रजेत् ।।५०।।

भावार्थ--मोह रूप कीचड़ को धोने वाली वह पवित्र बुद्धि, जिससे साधक तत्पद अर्थात् परमात्मपद का साक्षात् करता है मुझ ईश्वर के ही अधीन है। कहाँ तक कहा जाय, यह सब जगत् मेरी शक्ति का ही विलास है, मैं ही इसका प्रेरक हूं, तथा अन्त में मेरे ही अन्दर यह लय हो जाता है ।।४६-५०।।

अहं हि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः ।
परमात्मा परंब्रह्म मत्तो ह्यन्यो न विद्यते ।।५१।।
इत्येतत्परमं ज्ञानं युष्माकं कथितं मया ।
ज्ञात्वा विमुच्यते जतुर्ज्जन्म संसार बन्धनात् ।।५२।।

भावार्थ– मैं ही भगवान् ईश, स्वयं ज्योतिः–सनातन, परमात्मा, ब्रह्म हूँ; मुझ से अन्य और कोई नहीं है। हे मुनियो ! यह परम ज्ञान मैंने आप सब को सुनाया,– इसे जानकर प्राणी जन्म–संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है।५१–५२।

इति श्रीकूर्म्म पुराणे उ० ईश्वर गीता सूपनिषत्सु
ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्र ऋषि व्यास
सम्वादे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

———————

सप्तमोऽध्याय

ईश्वर-गीता

श्रृणुध्वमृषयः सर्व्वे प्रभावं परमेष्ठिनः ।
यं ज्ञात्वा पुरुषो मुक्तो न संसारे पतेत्पुनः ।।१।।
परात्परतरं ब्रह्म शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।
नित्यानन्दं निर्विकल्पं तद्धाम परमं मम ।।२।।
अहं ब्रह्मविदां ब्रह्मा स्वयंम्भूर्विश्वतोमुखः ।
मायाविनामहंदेवः पुराणो हरिरव्ययः ।।३।।

भावार्थ– हे ऋषियो ! आप सब परमात्मा के प्रभाव को श्रवण करें, जिसे जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है, और पुनः संसार चक्र में नहीं आता । ब्रह्मा, विष्णु, आदि से परे सनातन, निश्चल, अविकारी नित्य आनन्द स्वरूप वाला, निर्विकल्पात्मक, ब्रह्म का स्वरूप है, वही हमारा परम धाम है । वेद वेत्ताओं में स्वयम्भू चतुर्मुख ब्रह्मा मैं ही हूँ । मायावियों में सब से पुरातन देव हरि मैं हूँ ।।१–३।।

योगिनामस्म्यहं शम्भुः स्त्रीणांदेवी गिरीन्द्रजा ।
आदित्यानामहं विष्णुर्वसूनामस्मि पावकः ।।४।।
रुद्राणां शङ्करश्चाहं गरुडः पततामहम् ।
ऐरावतो गजेन्द्राणां[1] रामः शस्त्रभृतामहम् ।।५।।

भावार्थ– योगियों में अव्यय स्वरूप शम्भु हूँ, स्त्रियों में भगवती पार्वती हूं, आदित्यों में विष्णु, वसुओं में पावक हूँ । रुद्रों में शङ्कर, पक्षियों में गरूड, गजेन्द्रों में ऐरावत तथा शस्त्र धारण करने वालों में रामचन्द्र मैं ही हूँ ।।४–५।।

---

१) राम पद से 'परशुराम और बलराम' भी लेना चाहिये ।

ऋषीणाञ्च वशिष्ठोऽहं देवानाञ्चशतक्रतुः ।
शिल्पिनां विश्वकर्म्माहं प्रह्लादः सुरविद्विषाम् ।।६।।
मुनीनामप्यहं व्यासो गणानाञ्च विनायकः ।
वीराणां वीरभद्रोऽहं सिद्धानां कपिलो मुनिः ।।७।।
पर्व्वतानामहं मेरुर्नक्षत्राणाञ्च चद्रमाः ।
वज्रम्प्रहरणान्तञ्च व्रतानां सत्यमस्म्यहम् ।।८।।

भावार्थ– मैं ऋषियों में वशिष्ठ, देवों में इन्द्र, शिल्पियों में विश्वकर्मा, राक्षसों में प्रह्लाद, मुनियों में व्यास, गणों में विनायक, वीरों में वीर भद्र, और सिद्धों में कपिलमुनि हूं । पर्व्वतों में मेरु, नक्षत्रों में चन्द्रमा हथियारों में बज्र तथा व्रतों में सत्य मैं ही हूं ।।६–८।

अनन्तो भोगिनां देवः सेनानीनां च पावकिः ।
आश्रमाणां गृहस्थोऽहमीश्वराणां महेश्वरः ।।९।।
महाकल्पश्च कल्पानां युगानां कृतमस्म्यहम् ।
कुवेरः सर्व्व यक्षाणां गणेशानां च वीरुकः ।।१०।।
प्रजापतीनां दक्षोऽहं निर्ऋतिः सर्वरक्षसाम् ।
वायुर्वलवतामस्मि द्वीपानां पुष्करोऽस्म्यहम् ।।११।।

भावार्थ– मैं सर्पों में अनन्तदेव, सेनापतियों मे कार्तिकेय, आश्रमों में गृहस्थ, ईश्वरों में महेश्वर, कल्पों में महाकल्प, युगों में सत्ययुग हूँ । सब यक्षों में कुवेर, गणेशों में वीरुक, प्रजापतियों में दक्ष, समस्त राक्षसों में निर्ऋति, बलवानों में वायु तथा द्वीपों में पुष्कर मैं ही हूं ।।९–११।।

मृगेन्द्राणां च सिंहोऽहं यन्त्राणां धनुरेवच ।
वेदानां सामवेदोऽहं यजुषा शतरुद्रियम् ।।१२।।
सावित्री सर्वजप्यानां गुह्यानां प्रणवोस्म्यहम् ।
सूक्तानां पौरुषंसूक्तं जेष्ठ सामच सामसु ।।१३।।
सर्व वेदार्थ बिदुषां मनुः स्वायम्भुवोस्म्यहम् ।
ब्रह्मावर्त्तस्तु देशानां क्षेत्राणामविमुक्तकम् ।।१४।।

भावार्थ– मैं मृगेन्द्रों में सिंह, यन्त्रों में धनुष, वेदों में सामवेद और यजुर्वेद में शत रुद्रिय हूँ। जितने जप हैं उनमें सावित्री, गोपनीय तत्वों में ओंङ्कार, सूक्तों में पुरुष सूक्त, सामों में जेष्ठ साम, समस्त वेद वेत्ताओं में स्वायम्भुव मनु मैं ही हूँ। देशों में ब्रह्मावर्त, क्षेत्रों में अविमुक्त क्षेत्र, (काशी) हूं ॥१२-१४।

विद्यानामात्म विद्याहं ज्ञानानामैश्वरं परम् ।
भूतानामस्म्यहं व्योमतत्त्वानां मृत्युरेव च ॥१५॥
पाशानामस्म्यहं माया कालः कल्यतामहम् ।
गतीनां मुक्तिरेवाहं परेषां परमेश्वरः ॥१६॥
यच्चान्यदपिलोकेऽस्मिन् सत्त्वं तेजो बलाधिकम् ।
तत्सर्वं प्रतिजानीध्वं मम तेजोविजृम्भितम् ॥१७॥

भावार्थ–समस्त विद्याओं में आत्मविद्या मैं हूँ, ज्ञानों में परम ऐश्वरीय ज्ञान मैं हूं, भूतों में आकाश मैं हूँ, और तत्वों में मृत्यु मैं हूं। पाशों में माया, आकलन करने वालों में काल, गतियों में मुक्ति, तथा पर तत्वों में परमेश्वर मैं हूँ। जो कुछ इनसे भिन्न संसार में तेज और बल से सम्पन्न वस्तुएँ हैं, वे सब मेरे तेज से संवृद्धि को प्राप्त हैं, इसे आप लोग निश्चित समझें। संक्षेप में मैंने अपनी विभूतियों का दिग्दर्शन मात्र आप लोगों से कहा है ॥१५–१७॥

आत्मानः पशवः प्रोक्ता सर्व्वे संसार वर्त्तिनः ।
तेषां पति रहंदेवः स्मृतः पशुपति र्बुधैः ॥१८॥
माया पाशेन बध्नामि पशूनेतान् स्वलीलया ।
मामेव मोचकं प्राहुः पशुनां वेद वादिनः ॥१९॥
माया पाशेन बद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते ।
मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमव्ययम् ॥२०॥

भावार्थ–संसार के नानाप्रकार के विषयों में रुचि रखने वाले जीवों की पशु, संज्ञा है। विद्वानों ने उन पशुओं का स्वामी पशुपति देव मुझे ही कहा है। माया रूपी फाँस में उन पशुओं को मैं ही अपनी लीला से बाँधता हूँ। वेदवादी मुझे ही उन पशुओं को मुक्त करने वाला बतलाते हैं। परमात्मा स्वरूप भूतों का स्वामी अविकारी मुझे छोडकर माया फाँस से बँधे हुये जीवों को छुड़ाने वाला और कोई भी नहीं ॥१८–२०॥

चतुर्विंशति तत्त्वानि माया कर्म्म गुणा इति।
एते पाशाः पशुपतेः क्लेशाश्च पशुबन्धनाः ॥२१॥
मनो बुद्धिरहंकारः खानिलाग्नि जलानिभः।
एता प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्च तथापरे ॥२२॥
श्रोत्रंत्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणं चैवतु पंचमम्।
पायूपस्थं करौ पादौ वाक् चैव दशमी मता ॥२३॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैवच।
त्रयो विंशतिरेतानि तत्त्वानि प्राकृतानि च ॥२४॥

भावार्थ–चौवीस तत्व, माया, कर्म और गुण ये पशुपति भगवान् के पाश कहे जाते हैं और क्लेश, ही पशुओं के वन्धन हैं। मन, बुद्धी अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि ये ही ईश्वर की आठ प्रकृतियां हैं। इनसे भिन्न विकार है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और पांचवी नासिका तथा गुदा, उपस्थ, हाथ, पांव और वाक् ये ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्दिय के भेद से दश इन्द्रियाँ हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से तेईस तत्व प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण प्रकृत हैं ॥२१–२४॥

चतुर्विंशकमव्यक्तं प्रधानं गुणलक्षणम्।
अनादि मध्य निधनं कारणं जगतः परम् ॥२५॥
सत्वं रजस्तम श्चेति गुणत्रयमुदाहृतम्।
साम्यावस्थितिमेतेषामव्यक्तां प्रकृतिं विदुः ॥२६॥
सत्वं ज्ञानं तमोज्ञानं राजसं समुदाहृतम्।
गुणानां बुद्धि वैषम्याद् वैषम्यं कवयोः विदुः ॥२७॥

भावार्थ– चौबीसवाँ तत्व अव्यक्त है त्रिगुण साम्यावस्था वाला जिसे प्रधान कहते हैं, आदि, अन्त, विनाश रहित जगत् का कारण है। सत्व, रज, तम यह तीन गुण कहे जाते हैं। इनकी न्यूनाधिक भाव से रहित साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। "सत्वरजस्तम सां साम्यावस्था प्रकृतिः" (सांख्य कौमुदी) ज्ञान भी गुणों के वैषम्य से सात्वकि, राजस, तामस भेद से तीन प्रकार का विद्वानों ने निश्चय किया है। ॥२५–२७॥

धर्माधर्माविति प्रोक्तौ पाशौ द्वौ कर्म संज्ञितौ।
मय्यर्पितानि कर्माणि न बन्धाय विमुक्तये ॥२८॥

अविद्यामस्मितां रागं द्वेषञ्चाभिनिवेशनम्।
क्लेशा ख्याँस्तान् स्वयं प्राह पाशानात्मनि बन्धनात्॥२९॥

एतेषामेव पाशानां मायाकारणमुच्यते।
मूलप्रकृतिरव्यक्तासाशक्तिर्मयि तिष्ठति ॥३०॥

भावार्थ–कर्म संज्ञा वाले धर्म और अधर्म ये ही दोनों पाश हैं, परन्तु ये ही कर्म मुझे अर्पण करने पर–बन्धन ता कारण नहीं होते, प्रत्युत् ये मुक्ति को प्रदान करते हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश यें पांच क्लेश हैं। ये आत्मा को बाँधते हैं, अतएव ये पाश हैं। इन समस्त पाशों (बन्धनों) का कारण माया है, जिसे मूल प्रकृति भी कहते हैं; वह शक्ति रूप से हमारे अन्दर रहती है। "अनात्मनि च देहादौ आत्मबुद्धिस्तु देहिनाम्,। अविद्या तत्कृता बन्धस्तन्नाशे मोक्ष उच्यते ॥" (सर्वदर्शन संग्रह) अर्थात् अनात्म देहादि पदार्थों में जो आत्म बुद्धि है, उसे ही अविद्या कहते हैं, उसी से जीवों को बन्ध होता है, और उसके नाश होने पर मोक्ष मिलता है। 'द्रग् दर्शन शक्तयोरेकात्मत्वाभिमानोऽस्मिता'–अर्थात्–चेतन और जड़ इनके एकत्वाभिमान को अस्मिता कहते हैं। 'सुखा नुशयी रागः' (यो० द० सू० ७ पा० २) अर्थात्–सुख का स्मरण करके उसके साधन में जो तृष्णा करता है

उसे राग कहते हैं। "दु:खनुशयी द्वेष:" (यो० द० पा० २ सू० ८) अर्थात् दु:ख देखकर घृणा उत्पन्न होना द्वेष है। "स्वरस वाही विदुषोऽपि तथा रुढोऽभिनिवेश:।" (यो० द० पा० २ सू० ९) अर्थात्–स्वभावत: अनेक योनिगत मरण दु:ख भय से भयभीत होना अभिनिवेश दु:ख कहलाता है। ये ही योग के मत से पाँच क्लेश कहे जाते हैं ।।२८—३०।।

स एव मूल प्रकृति: प्रधानं पुरुषोऽपि च।
विकारा महदादीनि देव देव: सनातन: ।।३१।।
स[1] एव बन्ध: स च बन्धकर्ता स एव पाश: पशुभृत्स एव।
स वेद सर्वं न च तस्य वेत्ता तमाहुराद्यं पुरुषं पुराणम्।।३२।।

भावार्थ– प्रधान मूल प्रकृति पुरुष, तथा महदादिविकार सब परमात्मा और सनातन हैं। वही बन्ध, वही बन्धकर्ता एवं पाश और पशुओं का पोषण करने वाला है। वही सबको जानता है; उसका जानने वाला उससे भिन्न और कोई नहीं। उसे ही आद्य, पुराण, एवं पुरुष भी कहते हैं ।।३१–३२।।

इति श्रीकूर्म्म पुराणे उत्तराद्धे ईश्वर गीतासूपनिषत्सु
हिन्दी अनुवाद युक्तासु ब्रह्म विद्या योग ऋषि
व्यास सम्वादे सप्तमोध्याय: ।।७।।

---

१) 'सर्वं खल्विदं' ब्रह्म का भाव वर्णित है।

अथ अष्टमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

अन्यद्गुह्यतमं ज्ञानं वक्ष्ये ब्राह्मणपुङ्गवाः ।
येनासौ तरते जन्तुर्घोरं संसारसागरम् ॥१॥
अहं ब्रह्म मयः शान्तः शाशवतो निर्म्मलोऽव्ययः ।
एकाकी भगवानुक्तः केवलः परमेश्वरः ॥२॥

अर्थात्–हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ मुनिगण ! पूर्वाध्याय में कथित ज्ञान से विलक्षण ज्ञान, मैं आप सब को सुनाना हूँ; यह ज्ञान ऐसा है जिसे जानकार जीव घोर संसार-सागर से तर जाता है । मैं सब से बडा शान्त, सनातन, निर्मल, अविकारी, एक, भगवान्, केवल और परमेश्वर स्वरूप से शास्त्र में प्रतिपादित हूँ ।

मम योनिर्महद् ब्रह्म तत्र गर्भं दधाम्यहंम् ।
मूलमायाभिधानन्तं ततो जातमिदं जगत् ॥३॥
प्रधानं पुरुषो ह्यात्मा महद्भूतादिरेवच ।
तन्मात्राणि मनोभूतानीन्द्रियाणि च जज्ञिरे ॥४॥
ततोऽण्डमभवद्धैममर्क कोटि समप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे महाब्रह्मा मच्छक्तया चोपवृंहितः ॥५॥

भावार्थ–मेरी माया जिसे त्रिगुणात्मक प्रकृति भी कहते हैं, वही समस्त भूतों का कारण है । उसे महद् इसलिये कहते हैं कि सब कार्यों से महत्व गुण विशिष्ट है । उस महद् ब्रह्म रूप योनि में समस्त भूतों के कारण हिरण्यगर्भ के जन्म का बीज में बोता हूं । उसीसे यह जगत् उत्पन्न होता है, इसलिये इसे भी माया का ही कार्य कहते हैं; माया इसका मूल है । प्रधान पुरुषात्मा महद् जो समस्त भूतों के आदि में

प्रकट होता है, तन्मात्रायें (शब्द तन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रा, रूप तन्मात्रा, रस तन्मात्रा, और गन्ध तन्मात्रा) मन, स्थूल पांचों भूत और इन्द्रियाँ पश्चात् क्रम से उत्पन्न हैं। प्रथम करोड़ों सूर्य्य के समान प्रभा वाला हिरण्यमय अण्ड का आविर्भाव होता है, उसी में महाब्रह्मा मेरी शक्ति संयुक्त होकर प्रकट होते हैं ।।३–५।।

ये चान्ये बहवो जीवास्तन्मयाः सर्व एवते ।
नमां पश्यन्ति पितरं मायया मम मोहिताः ।।६।।
या सु योनिषु ताः सर्व्वाः सम्भवन्तीह मूर्त्तयः ।
तां मातरं परां योनिं मामेव पितरं विदुः ।।७।।
यो मामेवं विजानाति बीजिनं पितरं प्रभुम् ।
सवीरः सर्व्व लोकेषु न मोहमधिगच्छति ।।८।।

भावार्थ– नाना प्रकार जितने जीव देखने में आरहे हैं, ये सब तन्मय अर्थात् प्रकृति मय ही हैं, और मेरी माया से मोहित होने के कारण जगत् के पिता मुझे नहीं जानते हैं। जिस योनि में ये सब मूर्ति को धारण करते हैं, उस परा योनि को माता तथा मुझे पिता कहते हैं। जो कोई इस प्रकार जगत् का बीज प्रभु और पिता स्वरूप वाला जानता है वह वीर-पुरुष समस्त लोकों में कभी भी मोह को नहीं प्राप्त होता है ।।६–८।।

ईशानः सर्व्व विद्यानांभूतानां परमेश्वरः ।
ओङ्कार मूर्तिर्भगवानहं ब्रह्मा प्रजापतिः ।।९।।
समं सर्व्वेसु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनशयन्तं यः पश्यति स पश्यति।।१०।।
समं पश्यन्हि सर्व्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
नहिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति पराङ्गतिम्।।११।।

भावार्थ – समस्त विद्याओं का ईश तथा समस्त भूतों का परमेश्वर, ओङ्कार मूर्ति वाला भगवान् ब्रह्मा प्रजापति मैं ही हूँ। समस्त भूतों में सम रूप से स्थित विनाश को प्राप्त होने वालों में न नष्ट होने वाले मुझ परमेश्वर के स्वरूप को जानता है, वही जानने वाला है। सर्वत्र समभाव से मुझ परमात्मा के स्वरूप को देखने वाला किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता है, इसी से वह पुरुष परांगति का भागी होता है ॥९–११॥

विदित्वा सप्तसूक्ष्माणि षडङ्गञ्च महेश्वरम् ।
प्रधान विनियोगज्ञः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१२॥
सर्व्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वच्छन्दता नित्यमलुप्त शक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विदित्वा षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥१३॥

भावार्थ– सातो सूक्ष्म और षडङ्ग स्वरूप से युक्त महेश्वर को विनियोग का ज्ञाता पुरुष जानकर पर ब्रह्म को प्राप्त होता है। महेश्वर के यही छः अंग कहे जाते हैं– सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बोध, स्वच्छन्दता, नित्य अलुप्त शक्ति, और अनन्तशक्ति इन्हें षड् ऐश्वर्य भी कहते हैं।

तन्मात्राणि मन आत्मा च तानि सूक्ष्माण्याहुः सप्त तत्त्वात्म कानि।
या सा हेतुः प्रकृतिः सा प्रधानं बन्धः प्रोक्तो निनयेनापि तेन ॥१४॥
या सा शक्तिः प्रकृतौ लीन रुपा वेदेषूक्ता कारणं ब्रह्म योनिः।
तस्या एकः परमेष्ठी पुरस्तान्माहेश्वरः पुरुषः सत्यरूपः ॥१५॥

भावार्थ– पांच तन्मात्रायें, मन और आत्मा ये ही सात सत्व सूक्ष्म कहे जाते हैं। इनका हेतु प्रकृति वही प्रधान है, उसी के द्वारा बन्धादि होते हैं। जो शक्ति प्रकृति में लीन रहती है, जिसे वेदों में कारण तथा ब्रह्मा योनिरूप से कहा गया है, उसका संचालक एक महेश्वर सत्यरूप परमेष्ठी मैं ही आदि में विद्यमान रहता हूँ ॥१४–१५॥

ब्रह्मा योगी परमात्मा महीयान् व्योम व्यापी वेदवेद्य: पुराण: ।
एको रुद्रो मृत्युमव्यक्तमेकं बीजं विश्वं देव एक: स एव ।।१६।।
तमेवैकं प्राहुरन्येऽत्यनेकं त्वामेवात्मा केचि दन्यं तमाहु: ।
अणोरणीयान्महतो महीयान्महादेव: प्रोच्यते विश्व रूप: ।।१७।।
एवं हि यो वेद गुहाशयं परं प्रभुं पुराणं पुरुषं विश्वरूपम् ।
हिरण्मयं बुद्धि मतां पराङ्गति स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति१८

भावार्थ – सब से बड़ा होने से ब्रह्मा, समस्त भूतों के साथ व्यापक रूप से योग रखने से योगी, जीवात्माओं से उत्कृष्ट होने से परमात्मा, गुण विशिष्ट होने से महीयान् आकाश में भी व्यापक, वेद से ही जानने योग्य, सबसे प्रथम होने से एक मात्र पुराण, जगत् का लय करने से रुद्र; प्राण वियोगानुकूल व्यापार का नियामक होने से मृत्यु, स्फुट न होने से अव्यक्त, सब का मूल कारण सर्व स्वरूप वाला एक देव, वही सब रूप से कहा जाता है। इस एक परमात्मा को कोई अनेक भी कहते हैं; वे पृथक्-पृथक् नामों से उसका व्यापार करते हैं। अणु से भी अणु, बड़ों से भी बड़ा, महीयान् विश्वरूपात्मक महादेव शास्त्रों में प्रतिपादित होते हैं। यही भाव उपनिषद में भी आये हैं–'अणोरणीयान् महतो महीयान्–आत्मास्य जन्तुर्निहितो गुहायां तमक्रतु: पश्यति वीत शोको धातु: प्रसादात् महिमानमात्मन: (क० उ० अ० १ मं० २०) अर्थात्–– आत्मदेव छोटों से भी छोटा, और बड़ों से भी बड़ा, वह बुद्धि रूप गुहा में प्रकाशित हो रहा है, संकल्प रहित वीतशोक पुरुष ही धातुओं के विकार से रहित होकर उसकी महिमा को देखते हैं। इस प्रकार बुद्धि रूप गुहा में विद्यमान उत्कृष्ट, अनन्त प्रभाव वाले पुराण, विश्व रूप हिरण्मय स्वरूप वाले, तथा बुद्धिमानों की परमगति स्वरूप पुरुष को जो बुद्धिमान जान लेता है, वह बुद्धि को अतिक्रमण कर जाता है, अर्थात्–जन्म मरणादि दु:खों से रहित हो जाता है ।।१६–१८।।

इति श्रीकूर्म्म पुराणो उत्तरार्द्धे ईश्वर गीतासुपनिषत्सु भाषानुवाद विभूषिता सुब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे ऋषि व्यास सम्वादे अष्टमोध्याय: ।।८।।

नवमोऽध्यायः

ऋषि उवाच

निष्कलो निर्म्मलो नित्यो निष्क्रियः परमेश्वरः ।
ततो वद महादेव विश्वरूपः कथं भवान् ।।१।।

ईश्वर उवाच

नाहं विश्वो न विश्वञ्च मामृते विद्यते द्विजाः ।
माया निमित्त मात्रास्ति सा चात्मनि मयाश्रिता ।।२।।
अनादि निधना शक्तिर्माया व्यक्ति समाश्रया ।
तन्निमित्तः प्रपञ्चोऽयमव्यक्ताज्जायते खलु ।।३।।

भावार्थ – पूर्वाध्याय के निरूपण के पश्चात् श्री शंकर जी किञ्चित् काल पर्यन्त मौनावस्था में अवस्थित रहे। इतने में ऋषियों ने पूछा भगवन् ! निष्कल अर्थात् अंश रहित, निर्मल, नित्य, क्रिया रहित परमेश्वर का स्वरूप आपने बताया। इसके बाद हम लोगों को यह शङ्का उठती है कि आप विश्वरूप किस प्रकार हैं। ऋषियों के इस प्रश्न को सुनकर भूत भावन भगवान् भावगर्भित वाणी से बोले हे ब्राह्मणो ! 'मैं विश्व नहीं हूँ' न विश्व ही मेरे बिना रह सकता है, यह विश्व माया निमित्तक है, और माया मेरे आश्रित रहते हुये आत्मा में अभिन्न रूप से रहती है। यह माया शक्ति आदि अन्त रहित स्थूल जगत् को उत्पन्न करने वाली है; उसके निमित्त ही यह दृश्यमान (जगत्) प्रपञ्च अव्यक्त से आविर्भूत होता है ।।१—३।।

अव्यक्तं कारणं प्राहुरानन्दं ज्योतिरक्षरम् ।
अहमेव परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्नविद्यते ।।४।।
तस्मान्मे विश्वरूपत्वं निश्चितं ब्रह्मवादिभिः ।
एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् ।।५।।
अहं तत्परमं ब्रह्म परमात्मा सनातनः ।
अकारणं द्विजा प्रोक्ता न दोषो ह्यात्मनस्तथा ।।६।।

भाषार्थ:––अक्षर ज्योति: स्वरूप अव्यक्त (शक्तितत्व) ही को कारण कहा जाता है। आनन्द स्वरूप अहं पद का वाच्य मैं परब्रह्म ही सब कुछ हूँ, मुझसे अन्य और कोई नहीं है। इसी लिए ब्रह्मवेत्ताओं ने मेरा स्वरूप विश्वरूप वाला निश्चित् किया है; एकत्व और भिन्नत्व में यह निदर्शन (उदाहरण) दिया जाता है अर्थात्- कारण रूपं में मैं एक हूँ, कार्य रूप में मैं नानारूप वाला हो गया हूँ। इस विषय में श्रुति का भी प्रमाण है। यथा–"वायुर्ह्येको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव एकस्तथा सर्व्व भूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रति रूपो वहिश्च।" अर्थात्–वायु के समान एक होता हुआ नाना प्रकार के वस्तुओं के साथ नाना रूप वाला प्रतीत हो रहा है, इसी प्रकार आत्मा भी एक होता हुआ नाना रूपवाला हो रहा है। हे ब्राह्मणो ! मैं ही परब्रह्म परमात्मा सनातन हूँ, परमार्थत: मैं किसी का कारण नहीं हूँ। न आत्मा में किसी प्रकार का दोष ही है। यदि स्वभावत: कोई दोष उसमें होगा तो उसकी निवृत्ति न होगी और आत्मा के शुद्धत्वादि धर्मों का भी व्याघात होगा ॥४–६॥

अनन्ता: शक्तयोऽव्यक्ता मायया संस्थिताध्रुवा:।
तस्मिन्दिवि स्थितं नित्यमव्यक्तं भाति केवलम् ॥७॥
अभिन्नं वक्ष्यते भिन्नं ब्रह्माव्यक्तं सनातनम्।
एकया मायया युक्तमनादि निधनं ध्रुवम् ॥८॥
पुंसोऽन्याभूद्यथा भूतिरन्यया न तिरोहितम्।
अनादि मध्यन्तिष्ठन्ते चेष्टते विद्यया किल ॥९॥
तदेतत्परमव्यक्तं प्रभामण्डलमण्डितम्।
तदक्षरं परं ज्योतिस्तद् विष्णो: परमं पदम् ॥१०॥

भाषार्थ––अनन्त अव्यक्त शक्तियाँ निश्चल भाव वाली माया से स्थित हैं। द्योतनात्मक दिव लोक में इन शक्तियों से अभिन्न स्थित, नित्य, अव्यक्त, केवल, परमात्मा प्रकाशित हो रहा है। एक, माया से युक्त, आदि अन्त रहित, अव्यक्त सनातन ब्रह्म अभिन्न (अद्वैत) होता हुआ भी भिन्न रूप से व्यवहृत होता है। जैसे पुरुष का सामर्थ्य उस से भिन्न

कहा जाता हैं, परन्तु वास्तव में अभिन्न है, वैसे ही ब्रह्म भी है। वह ब्रह्म अनादि होता हुआ भी मध्य काल में स्थित जगत् को अपनी विद्या शक्ति से व्यापारवान् करता रहता है, अथवा अविद्या या माया से समस्त कार्य्यों का संचालन करता रहता है। वह ब्रह्म परम अव्यक्त एवं प्रभा-मण्डल से सुशोभित है, और अक्षर परम ज्योतिः स्वरूप वाला है, उसे ही विद्वान् विष्णु का परम पद कहते हैं।

तत्र सर्व मिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत्।
तदेवेदं जगत्कृत्स्नं तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥११॥
यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन ॥१२॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।
तं विज्ञाय परिमुच्यते विद्वान्नित्यानन्दीभवति ब्रह्मभूतः ॥१३॥
अस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद्यज्ज्योतिषां ज्योति रेकं दिविस्थम्।
तदेवात्मानं मन्यमानोऽथ विद्वानात्मानन्दी भवति ब्रह्मभूतः ॥१४॥

भाषार्थ--उस परमपद नामक परम स्थान में ही यह समस्त जगत् ओतप्रोत हो रहा है, जैसे वस्त्रों में तन्तु। तन्तु से पृथक रूप में वस्त्र कोई वस्तु नहीं है। इसी प्रकार यह जगत् भी ब्रह्म रूपात्मक है। उसे जानकार मनुष्य संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है। जहां पर वाणी न जाकर मन के साथ लौट आती है, ऐसे ब्रह्म के आनन्द को जानता हुआ विद्वान किसी से भयभीत नहीं होता। श्रुति आगे के मन्त्र में साधक के लिये 'अहं' प्रत्यय के साथ उपदेश करती हैं--

"तम से परे, आदित्य वर्ण वाले, महान् आत्मा को मैं जानता हूं" ऐसे आत्मा को जानकर पुरुष मुक्त हो जाता है, और ब्रह्मीभूत विद्वान् नित्यानन्दी हो जाता है। इस तत्व से परे और कोई भी तत्व नहीं है, जो प्रकाशात्मक, दिवलोक स्थित, एवं ज्योतियों की ज्योति है उसे ही आत्मरूप जानता हुआ विद्वान् ब्रह्मभूत होता हुआ आत्मानन्द वाला हो जाता है ॥११-१४॥

तदप्यहं कलिलं गूढदेहं ब्रह्मानन्दममृतं विश्वधामा ।
वदन्त्येवं ब्राह्मणा ब्रह्मनिष्ठा यत्र गत्वा न निवर्तन्ति भूयः ॥१५॥
हिरण्मये परमाकाशतत्त्वे यद्वै दिवि विप्रतिभातीवतेजः ।
तद्विज्ञाने परिपश्यन्ति धीरा विभ्राजमानं विमलं व्योम धाम ॥१६॥

भाषार्थ– यद्यपि मैं पूर्वोक्त लक्षण से लक्षित हूँ, तो भी प्रपञ्च का विनाशक, गूढ़ स्वरूप वाला, ब्रह्मानन्द, अमृत एवं विश्वधामात्मक हूँ। ऐसा ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणगण प्रतिपादन करते हैं। जहां पर जाकर जीव पुनः संसार में नहीं लौटता है। परमाकाश तत्व एवं हिरण्मय स्वरूप वाले दिवलोक में वह तेज स्वतः प्रकाशित हो रहा है। उसी विमल आकाश की तरह व्यापक परम तेज को धीर लोग विज्ञान के द्वारा जानते हैं ॥१५–१६॥

ततः परम्परिपश्यन्ति धीरा आत्मन्यात्मानमनुभूय साक्षात् ।
स्वयं प्रभुः परमेष्ठी महीयान्ब्रह्मानन्दी भगवानीश एषः ॥१७॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्व व्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
तमेवैकं येऽनुपश्यन्तिधीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥१८॥

भाषार्थ– नाम रूपात्मक जगत् से परे धीर लोग आत्मा में ही आत्मा की साक्षात् अनुभूति कर उसे सर्वदा देखते रहते हैं। वह भगवान् स्वयं प्रभाव वाला, परमेष्ठी, महान्, ब्रह्मानन्दी, ईश आदि संज्ञाओं से कहा जाता है। एक ही देव सब भूतों में छिपा हुआ सर्व्वव्यापी और समस्त भूतों का अन्तरात्मा है। उसे जो धीर जन देख लेते हैं, उन्हीं को वास्तविक शान्ति मिलती है अन्य लोगों को नहीं ॥१७–१८॥

सर्व्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूत गुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवान्तस्मादन्यन्न विद्यते ॥१९॥
इत्येतदीश्वर ज्ञानमुक्तं वो मुनिपुङ्गवाः ।
गोपनीयं विशेषेण योगिनामपि दुर्लभम् ॥२०॥

भाषार्थ– वह परमात्मा सर्व मुख शिर-ग्रीवा वाला है, तथा समस्त भूतों की बुद्धिरूपी गुहा में स्थित है। वही भगवान् सर्वव्यापी कहे जाते हैं, उनसे अन्य और कोई नहीं है। हे मुनि श्रेष्ठो ! यह ईश्वरीय ज्ञान मैंने आप सब को सुनाया है। इसे अत्यन्त गुप्त रखियेगा, क्योंकि यह योगियों को भी दुर्लभ है ॥१९–२०॥

इति श्री कूर्म्म० पु० उ० ईश्वरगीता सूप निषत्सु
ब्र० वि० यो० शा० भाषा भाष्य मू० ऋ०
व्यास स० नवमोऽध्यायः ॥

अथ दशमोऽध्यायः

ईश्वर–उवाच

अलिंगमेकमव्यक्तं लिंगं ब्रह्मेति निश्चितम् ।
स्वयं ज्योतिः परं तत्त्वं पूर्वं व्योम्नि व्यवस्थितम् ॥१॥

अव्यक्तं कारणं यत्तदक्षरं परमं पदम् ।
निर्गुणं सिद्धि विज्ञानं तद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥२॥

तन्नष्टस्वान्तसंकल्पा नित्यं तद्भाव भाविताः ।
पश्यन्ति तत्परं ब्रह्म यत्तल्लिगमिति श्रुतिः ॥३॥

भाषार्थ– चिन्ह विशेष रहित 'एक' और अव्यक्त लिंग वाला ब्रह्म स्वरूप निश्चित किया गया है । वह सृष्टि के पूर्व ज्योतिः स्वरूप परतत्त्व परमाकाश में देदीप्यमान हो रहा था । जो अव्यक्त कारण कहा जाता है, वह अक्षर एवं परमपद, निर्गुण सिद्धियों का विज्ञान है, जिसे विद्वान् लोग ही देखने में समर्थ हैं । श्रुति जिस रूप में उसे लिंग कहती है, उसे वे ही मुमुक्ष ज्ञानी यथार्थ रूप में देख सकते हैं, जिनके अन्तःकरण के समस्त संकल्प नष्ट हो गये हैं, और जिनकी तदाकार वृत्ति की भावना सर्वदा एक सी बनी रहती है ॥१–३॥

अन्यथा नहि मां दृष्टुं शक्यं वैमुनिपुङ्गवाः ।
नहि तद्विद्यते ज्ञानं येन तज्ज्ञायते परम् ॥४॥

एतत्तत्परमं ज्ञानं केवलं कवयो विदुः ।
अज्ञानमितरज्ज्ञानं यस्मान्मायामयं जगत् ॥५॥

मज्ज्ञानं निर्म्मलं शुद्धं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ।
ममात्मासौ तदेवेदमिति प्राहुर्विपश्चितः ॥६॥

भावार्थ– हे मुनि श्रेष्ठो ! इसके अतिरिक्त मेरे स्वरूप को कोई नहीं देख सकता है; न कोई ऐसा ज्ञान ही है जिससे मुझ परब्रह्म का स्वरूप यथावत् जाना जा सके। इस परम उत्कृष्ट ज्ञान को केवल विद्वान् लोग ही जानते हैं। इस ज्ञान से भिन्न जितना ज्ञान है, वह सब क्षण-भङ्गुर मायामय समझना चाहिये (जो ज्ञान निर्मल, शुद्ध, निर्विकल्प और निर्विकार स्वरूप वाला है, वह हमारा स्वरूप है, और उसे ही विद्वान लोग पूर्ण ज्ञान कहते हैं।

येऽप्यनेकं प्रपश्यन्ति तत्परं परमं पदम्।
आश्रिताः परमां निष्ठां बुद्ध्वैक्यं तत्त्वमव्ययम् ॥७॥
पुनः परमं तत्त्वमेकं वानेकमीश्वरम्।
भक्त्या मां सम्प्रपश्यन्ति विज्ञेयास्ते तदात्मकाः ॥८॥
साक्षाद्देवं प्रपश्यन्ति स्वात्मानं परमेश्वरम्।
नित्यानन्दं निर्विकल्पं सत्यरूपमिति स्थितिः ॥९॥

भावार्थ– जो कोई विद्वान् परम निष्ठा को जानकर अनेकात्मक रूप से परम पद को देखते हैं, वे भी ऐक्यात्मक अव्यय तत्व के ही आश्रित हैं। जो कोई निश्चल भक्ति से परम तत्व को एक या अनेक रूप से देखते हैं, उन्हें भी तदात्मक ही जानना योग्य है। क्योंकि वे भी साक्षात् स्वात्म रूप मुझ परमेश्वर देव के देखने वाले हैं उस तत्व का स्वरूप नित्य, आनन्द, निर्विकल्प और सत्य रूपवाला है। अतएव दोनों की एक ही गति है ॥७–९॥

भजन्ते परमानन्दं सर्व्वगं जगदात्मकम्।
स्वात्मन्यवस्थिताः शान्ताः परेऽव्यक्ता परस्यतु ॥१०॥
एषा विमुक्तिः परमा मम सायुज्यमुत्तमम्।
निर्वाणं ब्रह्मणा चैक्यं कैवल्यं कवयो विदुः ॥११॥
तस्मादनादि मध्यान्तं वस्त्वेकं परमं शिवं।
स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञाय प्रमुच्यते ॥१२॥

भावार्थ– दूसरे लोग अपनी आत्मा में रमण करने वाले एवं शान्त वृत्ति वाले परम अव्यक्त स्वरूप आत्म देव को परमानन्द, सर्वत्रगामी, तथा जगदात्मक रूप से सदैव भजते हैं। यही परम विमुक्ति हैं, इसे ही मेरे साथ सायुज्य भाव की प्राप्ति या निर्वाण, अथवा ब्रह्म के साथ एकता रूप कैवल्य आदि संज्ञाओं से विद्वान् लोग व्यवहार करते हैं। क्योंकि मुक्ति के कारण आदि मध्य रहित, वस्तु स्वरूप एक परम शिव ही हैं। वही 'ईश्वर' 'महादेव' आदि संज्ञाओं से भी बोधित होते हैं। उन्हें ही जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। श्रुति भी इसी अर्थ को पुष्ट करती है –"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।" (श्वे० उ०) अर्थात्– उस महेश्वर को जानकर मुमुक्षु मृत्यु रहित स्थान को प्राप्त होता है इसे छोड़कर और कोई मुक्ति का मार्ग नहीं है ॥१०–१२॥

न तत्र सूर्यः प्रतिभातीह चन्द्रो नक्षत्राणां गणो नोत विद्युतः।
तद्भासितं ह्यखिलं भाति विश्वमतीव भासममलंयद्विभाति ॥१३॥
विश्वोदितन्निष्कलं निर्विकल्पं शुद्धं बृहत्परमं यद्विभाति।
अत्रान्तरे ब्रह्म विदोऽथ नित्यं पश्यन्ति तत्त्वमचलं यत्स ईशः ॥१४॥

भावार्थ– वहां न तो सूर्य, न चन्द्रमा, न नक्षत्र और न विद्युत् प्रकाश करने में समर्थ हैं, प्रत्युत उसके ही प्रकाश से मलरहित अखिल विश्व भासित हो रहा है। वह तत्व जिससे विश्व का उदय होता है, निष्कल, निर्विकल्प, शुद्ध और बृहत् रूप से प्रकाशित हो रहा है, एवं विश्व रचना तथा चैतन्य तत्व के मिश्रण में अचल स्वरूप वाले जिस तत्व को ब्रह्मवेत्तागण देखते हैं, वही ईश है ॥१३–१४॥

नित्यानन्दममृतं सत्यरूपं शुद्धं वदन्ति पुरुषं सर्ववेदाः।
प्राणानिति प्राण विनेशितारं ध्यायन्ति वेदैरिति निश्चितार्थाः ॥१५॥
नभूमिरापो न मनो न वह्निः प्राणोंऽनिलो गगनं नोत बुद्धिः।
न चेतनोऽन्यत्परमाकाश मध्ये विभाति देवः शिव एक केवलः ॥१६॥

इत्येत्तदुक्तं परमं रहस्यं ज्ञानं चेदं सर्व वेदेषु गीतम् ।
जानाति योगी विजनेऽथ देशे युञ्जीत योगं प्रयतो ह्यजस्रम्।। १७।।

भावार्थ,– नित्य, आनन्द, अमृत सत्य रूप और शुद्ध रूप से समस्त वेद परमात्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं। कोई-कोई प्राण रूप से ईश्वर का ध्यान करते हैं। इस प्रकार यह निश्चित् अर्थ है कि वहाँ न पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, न बुद्धि, न मन, अथवा चेतन प्राण हैं। उस परमाकाश में तो केवल एक शिव तत्व जो द्योतनात्मक स्वरूप वाला है, प्रकाशित हो रहा है। हे ऋषियो ! यह परम रहस्यमय ज्ञान जो समस्त वेदों में एक सा ही कहा गया हैं, मैंने आप सबको सुनाया; इसे विजन देश में (एकान्त प्रदेश में) आत्मा के साथ एकी भाव को प्राप्त होने वाला प्रयत्नशील योगी ही जान सकता है ।।१५–१७।।

इतिश्रीकूर्म्म पुराणे उ० ईश्वर गीता सूपनिषत्सु भाषार्थ अलंकृताषु ब्र० विद्यायां योग शास्त्रे ऋषि व्यास सम्वादे दशमोध्यायः ।।१०।।

अथ एकादशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि योगं परमदुर्लभम् ।
येनात्मानं प्रपश्यन्ति भानुमन्तमिवेश्वरम् ॥१॥
योगाग्निर्दह्यते क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम् ।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं साक्षान्निर्वाण सिद्धिदम् ॥२॥
योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्त्तते ।
योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसीदति महेश्वरः ॥३॥
एक कालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेवच ।
मे युञ्जन्ति महायोगं ते विज्ञेया महेश्वराः ॥४॥

भावार्थ – अब इसके पश्चात् परम दुर्लभ योग मार्ग का निरूपण करता हूँ, जिससे सूर्य के समान प्रकाश वाले ईश्वर को योगी गण देखते हैं। योग से उत्पन्न हुई अग्नि समस्त पाप पुञ्ज को नष्ट कर देती है मौक्ष एवं सिद्धियों को प्रदान करने वाला प्रसन्न ज्ञान उत्पन्न होता है। योग से ही ज्ञान होना है और ज्ञान से ही योग की प्रवृत्ति होती है। जो योग एवं ज्ञान दोनों से युक्त होते हैं, उनके उपर भगवान् महेश्वर प्रसन्न रहते हैं। एक काल, दो काल, तीनकाल या नित्य ही जो महायोग में युक्त होते हैं, उन्हें साक्षात् महेश्वर जानना चाहिये ॥१–४॥

योगस्तु द्विविधो ज्ञेयो ह्यभावः प्रथमोमतः ।
अयमेव महायोगः सर्वयोगोत्तमोत्तमः ॥५॥
शून्यं सर्व निराभासं स्वरूपं यत्र चिन्त्यते ।
अभाव योगः स प्रोक्तोयेनात्मानं प्रपश्यति ॥६॥
यत्रपश्यति चात्मानं नित्यानन्दं निरञ्जनम् ।
मयैक्यं स मया योगोभाषितः परमः स्वयम् ॥७॥
ये चान्ये योगिनां योगाः श्रूयन्ते ग्रन्थ विस्तरे ।
स ते ब्रह्म योगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥८॥

भावार्थ– योग दो प्रकार का है जिसमें पहला अभाव योग, और दूसरा समस्त योगों में उत्तम महायोग है। जिस काल में शून्य आकार हीन निराभास,स्वरूप का चिन्तन किया जाता है, उसे अभाव योग कहते हैं। जिसमें आत्मा का साक्षात्कार होता है और जिस अवस्था में नित्य आनन्द स्वरूप निर्विकार आत्मा को मेरे साथ ऐक्य रूप में देखा जाता है, उसे स्वयं मैंने परम योग कहा है। इसको छोडकर अन्य जितने योगियों के योग ग्रन्थान्तरों में सुने जाते हैं, वे सब इस ब्रह्म योग की सोलहवीं कला को भी प्राप्त नहीं कर सकते ।।५–८।।

यत्र साक्षात् प्रपश्यन्ति विमुक्ता विश्वमीश्वरम् ।
सर्वेषामेव योगानां संयोगः परमो मतः ।।९।।
सहस्रशोऽथ वहुशोये चेश्वरवहिष्कृताः ।
नते पश्यन्ति मामेकं योगिनो यत मानसाः ।।१०।।
प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोथ धारणा ।
समाधिस्थमुनिश्रेष्ठा यमश्च नियमासने ।।११।।
मय्येक चित्तता योगः प्रत्यन्तर नियोगतः ।
तत्साधनानि चान्यानि युष्माकं कथितानितु ।।१२।।

भावार्थ – जिसमें विमुक्त अवस्थापन्न योगी इस विश्व को ईश्वर से अभिन्न रूप से देखते हैं, वह योग समस्त योगों में श्रेष्ठ माना गया है। सहस्रों एवं बहुत से जीव जो ईश्वर से बहिष्कृत हैं, वे यत्नशील होते हुये भी एक मुझे देखने में समर्थ नहीं हैं। प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, समाधि, यम, नियम और आसन इन आठ अङ्गों से मेरे अन्दर बाह्य वृत्तियों से मन को हटाकर चित्त को लगाना योग कहा जाता है। हे मुनि श्रेष्ठो ? इसे ही साधन योग कहते हैं, इसके अन्यान्य साधनों का– वर्णन आप सब से विस्तार पूर्वक कहता हूँ। इनका नाम निर्देश संक्षेपतः कर दिया गया है। "यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोअष्टा वङ्गानि।" (यो०द० पा० २ सू० २९)

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्या परिग्रहौ ।
यमाः सङ्क्षेपतः प्रोक्ताश्चित्त शुद्धिप्रदानृणाम् ।।१३।।
कर्म्मणा मनसा वाचा सर्व्व भूतेषु सर्व्वदा ।
अक्लेशजननं प्रोक्ता त्वहिंसा परर्षिभि : ।।१४।।
अहिंसायाः परोधर्म्मो नास्त्यहिंसा परंसुखम् ।
विधिना या भवेद्धिसा त्वहिंसैव प्रकीर्तिता ।।१५।।
सत्येन सर्व्वमाप्नोति सत्ये सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ।
यथार्थ कथनाचारः सत्यम्प्रोक्तं द्विजातिभि : ।।१६।।

भावार्थ– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह संक्षेप से ये पाँचों यम कहे जाते हैं। ये साधकों के चित्त को शुद्ध करने वाले हैं। मन, कर्म और वाणी से किसी भी जीव को क्लेश न देने को ऋषियों ने– अहिसा बतलाया है। अहिसा के समान दूसरा धर्म नहीं है, और न अहिसा, के समान दूसरा कोई सुख ही है। वैदिक या स्मृति ग्रन्थों में जहाँ कहीं विधि रूप में हिंसा कहीं गई है, उसे अहिंसा ही समझना चाहिये, सत्य से सब वस्तुएँ प्राप्त होती हैं; सत्य में ही सब प्रतिष्ठित हैं, यथार्थ कथनाचार को ही ब्राह्मणों ने सत्य कहा हैं। इन भावों में योग दर्शन भी प्रणाम है– "अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्य्या परिग्रहायमाः" (यो० द० पा० २ सू० ३०) अर्थ स्पष्ट है ।।१३–१६।।

पर द्रव्यापहरणं चौर्यादथ बलेनवा ।
स्तेयं तस्यानाचरणादस्तेयं धर्मसाधनम् ।।१७।।
कर्म्मणा मनसा व चा सर्व्वावस्था सु सर्व्वदा
सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्य्यं प्रचक्षते ।।१८।।
द्रव्याणामप्यनादानमापद्यपि तथेच्छया ।
अपरिग्रहमित्याहुस्तं प्रयत्नेन पालयेत् ।।१९।।

भावार्थ—दूसरे के द्रव्य को चोरी से अथवा बलपूर्वक हरण करने को 'स्तेय' कहते हैं। उसके त्याग को अस्तेय कहा गया है; वह धर्म का साधन है। मन, वाणी, और कर्म से सर्वदा और सब दशाओं में मैथुन के त्याग को 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं। आपत्ति में भी द्रव्यों का संग्रह न करने को 'अपरिग्रह' कहते हैं। योग मार्गी को चाहिये कि प्रयत्न से इसका पालन किया करें ॥१७–१९॥

तपः स्वाध्याय सन्तोषौ शौचमीश्वर पूजनम् ।
समासान्नियमाः प्रोक्ता योग सिद्धिप्रदायिनः ॥२०॥
उपवास पराकादि कृच्छ्र चान्द्रायणादिभिः ।
शरीर शोषणम्प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम् ॥२१॥
वेदान्त शतरुद्रीय प्रणवादि जपम्बुधाः ।
सत्त्व शुद्धकरं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते ॥२२॥

भावार्थ- तप, स्वाध्याय, सन्तोष, शौच, और ईश्वर की पूजा संक्षेप में ये पाँचों नियम कहे जाते हैं। इनके आचरण से योग सिद्धि को प्राप्त होता है। उपवास पराकादि एवं कृच्छ्र चान्द्रायाणदि से शरीर के सुखाने को तपस्वी लोग उत्तम 'तप' कहते हैं। वेदान्त, शतरुद्रीय, प्रणव आदि के जप से मनुष्य का अन्तःकरण पवित्र होता है, और इसे 'स्वाध्याय' कहते हैं ॥२०–२२॥

स्वाध्यायस्य त्रयोभेदा वाचिको पांशु मनसाः ।
उत्तरोत्तरवैशिष्टयं प्राहुर्वेदार्थ वेदिनः ॥२३॥
यः शब्द बोध जननः परेषां शृण्वतां स्फुटम् ।
स्वाध्यायो वाचिकः प्रोक्त उपांशोरथलक्षणम् ॥२४॥
ओष्ठयोः स्पन्द मात्रेण परस्या शब्द बोधकम् ।
उपांशुरेष निर्दिष्टः साध्वसो वाचिकाज्जपात् ॥२५॥
यत्पदाक्षर सङ्गत्या परिस्पन्दन वर्जितम् ।
चिन्तनं सर्वशब्दानां मानसं तज्जपं विदुः ॥२६॥

भावार्थ– स्वाध्याय का लक्षण महर्षि व्यास जी इस प्रकार लिखते है 'प्रणव पवित्राणां जपः' अर्थात्– पूवेक्ति श्लोक में कहे हुये वेदान्त,– शत रुद्रिय- आदि ही स्वाध्याय पद से यहाँ गृहीत है। पुनः स्वाध्याय तीन प्रकार का है,बाचिक,उपांशु, और मानस। ये उत्तरोत्तर परस्पर श्रेष्ठ हैं; अर्थात्– बाचिक से उपांशु,और उपांशु से मानस की श्रेष्ठता वैदिक विद्वान् मानते हैं। अन्य पुरुष जापक पुरुष के जप शब्दों को स्फुट रूप में श्रवण कर सकें, उसे बाचिक स्वाध्याय कहते हैं। इसके बाद उपांशु का लक्षण इस प्रकार किया जाता है, जिस जप में केवल ओष्ठों का स्पन्दन मात्र होता है, और अन्य किसी को शब्द सुनाई नहीं देता, वह उपांशु जप हैं। यह बाचिक से अधिक फलवाला है। जिस स्वाध्याय में पदाक्षरों की संगति से समस्त शब्दों का चिन्तन मात्र किया जाता हैं और क्रिया या स्पन्दन जिसमें कि चिन्मात्र भी नहीं होता, उसे मानस जप कहते हैं। इन तीनों प्रकार के जपों से जो सिद्धि योगी को प्राप्त होती है, उसे महर्षि पतञ्जलि योग दर्शन में लिखते हैं "स्वाध्यायादिष्ट देवता सं प्रयोगः" (यो० द० पा० २ सू० ४४) अर्थात्- स्वाध्याय से इष्ट देवता का साक्षात्कार होता है ॥२३–२६॥

यदृच्छा लाभतो वित्तं अलं पुंसो भवेदिति।
प्राशस्त्यमृषयः प्राहुः सन्तोषं सुख लक्षणम् ॥२७॥
बाह्यमाभ्यन्तरं शौचं द्विधा प्रोक्तं द्विजोत्तम।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यंमनःशुद्धिरथान्तरम् ॥२८॥
स्मृतिस्मरण पूजाभिर्वाङ्मनः काय कर्म्मभिः।
सुनिश्चला शिवेभक्तिरेतदीशस्यपूजनम् ॥२९॥

भावार्थ – दैव इच्छानुसार जो कुछ लाभ हो जाय, उसी में अपने को सन्तोष मानकर पुरुष अपना व्यवहार संचालन करे, उसे ही ऋषियों ने परम सुख स्वरूप वाला सन्तोष बताया है। "सन्तोषादनुत्तम सुख लाभः" (यो० द० पा० २ सू० ४२) हे ब्राह्मण श्रेष्ठ मुनिगण ?

शौच दो प्रकार माना गया है, एक वाह्य, दूसरा आन्तरिक। मृतिका, जल आदि द्वारा जो शौच (शुद्धि) है, उसे वाह्य शौच कहते हैं। मन की शुद्धि अर्थात्–काम, क्रोध, ईर्षा, भय आदि की निवृत्ति रूप आन्तरिक शौच कहाता है। मनसा, वाचा, कर्मणा, स्तुति, स्मरण, पूजा से मुझ परमात्मा शिव में निश्चल भक्ति होना ईश्वर का पूजन कहाता है। इस प्रकार पांचों नियमों का निरूपण किया गया है। महर्षि पतञ्जलि के मत से भो ये पांच नियम हैं। "शौच-सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः"(यो० द० २ सू० ३२) ॥२७–२९॥

यमाश्च नियमाः प्रोक्ता प्राणायामं निबोधत।
प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम् ॥३०॥
उत्तमाधममध्यत्वात् त्रिधायं प्रतिपादितः।
य एवद्विविधः प्रोक्तः सगर्भोऽगर्भ एवच ॥३१॥
मात्रा द्वादशको मन्दश्चतुर्विंशति मात्रकः।
मध्यमः प्राण संरोधः षट् त्रिशन्मात्रिकोत्तमः ॥३२॥

भावार्थ– हे मुनियों ? संक्षेप में यम नियम के स्वरूप को मैंने आप सब को बताया। अब इसके पश्चात् प्राणायाम के स्वरूप को कहता हूँ, आप लोग सावधान– चित्त से श्रवण करें। शरीरान्तः संचारी वायु का नाम प्राण है। उसके निरोध को 'प्राणायाम, कहते हैं, इसके उत्तम, मध्यम, और अधम भेद से तीन प्रकार हैं। फिर वह दो प्रकारों में विभक्त होकर 'सगर्भ' और 'अगर्भ' संज्ञा से व्यवहृत होता है। बारह मात्रा काल में निष्पन्न होने वाला 'मन्द' प्राणायाम है। 'तीन' चुटकी के बजाने में जितना काल लगता है, उसे 'मात्रा' कहते हैं, चौबीस मात्रा-वाला मध्यम, और छत्तीस मात्रा वाला उत्तम है। इस प्रकार से प्राणा-याम के अभ्यास का विधान है ॥३०–३२॥

य: स्वेदकम्पनोच्छवासजनकस्तु यथाक्रमम् ।
संयोगश्च मनुष्याणामानन्दाच्चोत्तमोत्तमः ।।३३।।
सुनफाख्यं हितं योगं सगर्भ विजयम्बुधाः ।
एतद्वै योगिनः प्राहुः प्राणायामस्य लक्षणम् ।।३४।।
सव्याहृतिं स प्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिर्जपेदायत प्राणः प्रणायामोऽथ नामतः ।।३५।।

भावार्थ– जिस प्राण वृत्ति के निरोध में यथा-क्रम से स्वेद, (पसीना) कम्पना, और उच्छ्वास की उत्पति होती है, एवं मनुष्यों के आनन्द से विचित्र आनन्द की अनुभूति होती है, उसे (सुनफा) योग या सगर्भ विजय नाम से अभिहित करते हैं। योगियों के प्राणायाम का यही लक्षण समझना चाहिये। शिरोमन्त्र, व्याहृति, प्रणव के सहित प्राण को निरोध करके तीन बार-गायत्री जपने को केवल, नाम से प्राणायाम कहते हैं ।।३३–३४।।

रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुम्भकः ।
प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः ।।३६।।
रेचको वाह्यनिश्वासः पूरकस्तन्निरोधना ।
साम्येन संस्थितिर्या सा कुम्भकः परिगीयते ।।३७।।

भावार्थ– योगाभ्यास से जिनके मन अत्यन्त शुद्ध हो गये हैं, ऐसे योगी जन रेचक पूरक और कुम्भक के भेद से तीन प्रकार वाले प्राणायाम के स्वरूप को योग शास्त्रों में प्रतिपादन करते हैं। अन्तस्थिति वायु को बाहर निकालना रेचक कहलाता है। बाह्य गति के निरोध का नाम पूरक है। समभाव में जब प्राणों की स्थिति होती है, तब उसे ही कुम्भक कहा जाता है। "श्वास प्रश्वास योर्गति विच्छेदः प्राणायामः" (यो०द - पा० २ सू० ४९) अर्थात् श्वास–प्रश्वास का न होना ही प्रणायाम की सिद्धि का लक्षण है। ये सामान्यतः प्राणायाम के स्वरूप के लक्षण कहे गये हैं। इनका अधिक विस्तार योग शास्त्र की पुस्तकों में ही मिल सकता

है; स्थानाभाव के कारण यहाँ सम्पूर्ण बातों का लिखना असम्भव है। ३६–३७॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः।
निग्रहः प्रोच्यते सद्भिः प्रत्याहारस्तुसत्तमाः ॥३८॥
हृत्पुण्डरीके नाभ्यां वा मूर्ध्नि पर्व्वसु मस्तके।
एवमादिषु देशेषु धारणाचित्तबन्धनम् ॥३९॥
देशावस्थिति मालम्व्य ऊर्द्धं यावृति सन्ततिः।
प्रत्यन्तरैरसृष्टा या तद्धयान सूरयो विदुः ॥४०॥
एकाकारः समाधिः स्याद्देशालम्बनर्बाज्जितः।
प्रत्ययोह्यर्थमात्रेण योगसाधनमुत्तमम् ॥४१॥

भावार्थ– स्वभाव से ही विषयों में वृत्ति रखने वाले इन्द्रियों के निग्रह को, हे मुनि श्रेष्ठो ? श्रेष्ठ जनों ने प्रत्याहार बताया है। इस विषय में महर्षि पातञ्जलि का प्रणाम है। "स्वविषया असंप्रयोगे चित्तस्य-स्वरूपानुकार इवेन्द्रियांणा प्रत्याहारः" (यो० द० या० ५४) अर्थ स्पष्ट है। हृदय कमल में, नाभि प्रदेश में, मूर्धा स्थान में, त्रिकुटी में या मस्तक में अथवा चित्त के स्थिति योग्य किसी भी स्थान में–चित्त के लगाने का नाम धारणा हैं। किसी देश विशेष में चित्त की वृत्ति के प्रवाह को अन्य विषयों से हटा कर एकाकार करना कहलाता है। "तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्" (यो० द० पा० ३ सू०) इस प्रकार जब चित्त की स्थिति निर्दोष स्वरूपात्मक होकर एकाकार हो जाती है, और देश विशेष का अवलम्बन छूट जाता है; अर्थ मात्र का केवल ज्ञान रहता है उसे समाधि कहते हैं। "तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्य मिव समाधिः" (यो० द० पा० ३ सू० ३) श्लोकार्थ में समाधि का लक्षण तथा सूत्रार्थ में एक ही है।

धारणा द्वादशा यामा ध्यानं द्वादश धारणा।
ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते ॥४२॥

भावार्थ– बारह याम (पहर तक) देश विशेष में स्थिरता पूर्वक चित्त को लगाने से धारणा की सिद्धि होती है। इस प्रकार द्वादश धारणा

करने से ध्यान की सिद्धि होती है। इसी प्रकार बारह ध्यान करने से समाधि की सिद्धि होती है।

आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्द्धासनन्तथा ।
साधनानाञ्च सर्व्वेषामेतत्साधमुत्तमम् ॥४३॥
ऊर्व्वोरुपरि विप्रेन्द्राः कृत्वा पादतले उभे ।
समासीनात्मनः पद्ममेतदासनमुत्तमम् ॥४४॥
उभेकृत्वा पादतले जानूर्वोरन्तरेण हि ।
समासीनात्मनः प्रोक्तमासनं स्वस्तिकं परम् ॥४५॥
एकं पादमथैकस्मिन्विष्टभ्योरसिसत्तमाः ।
आसीनार्द्धासनमिदं योगसाधनमुत्तमम् ॥४६॥

भावार्थ— योगाभ्यास के उपयोगी आठवें अङ्ग आसन के स्वरूप को वतलाते हैं। स्वस्तिकासन, पद्मासन और अर्द्धासन ये तीन मुख्य हैं। जितने योग के साधन कहे गये हैं उनमें आसन का अभ्यास मुख्य है। यद्यपि अनेक प्रकार के आसन योग शास्त्र में माने जाते हैं, तथापि पूर्व्वोक्त तीन आसन ही अभ्यास में विशेषतः उपयोगी हैं। हे ब्राह्मणो ? उस प्रदेश के ऊपर दोनों पाँवों के तलवों को चढाकर जो आसन लगाया जाता है, उसे पद्मासन कहते हैं। जब दोनों तलुओं को उस भाग के नीचे रखकर आसीन हुआ जाता है, तब उसे स्वस्तिकासन कहते हैं। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठमुनिगण ? जब एक पाँव अपनी छाती में अड़ाकर बैठा जाता है, तब उसे अर्द्धासन कहते हैं। यह योग साधन अति उत्तम माना जाता है ॥४३–४६॥

अदेशकाले योगस्य दर्शनं न हि विद्यते ।
अग्न्यभ्यासे जलेवापि शुष्क पर्णचये तथा ॥४७॥
जन्तुव्याप्ते श्मशाने च जीर्ण गोष्ठे चतुष्पथे ।
स शब्दे स भये वापि चैत्य वल्मीक सञ्चये ॥४८॥
अशुभे दुर्जनाक्रान्ते मशकादि समन्विते ।
नाचरेद्देह बाधे वादौर्मनस्यादि सम्भवे ॥४९॥

भावार्थ–कुत्सित देश और काल में योग का अभ्यास नहीं किया जाता है, जैसे अग्नि के समीप, जल में, जहांपर सूखे हुये पत्तों का ढेर हो, जहाँ बहुत से जीवों का समुदाय हो, श्मशान में, टूटी हुई गोशाला में, चौराहे पर, जहाँ पर बहुत शब्द होता हो, भय युक्त स्थान में, जहाँ दीमक का बाहुल्य हो, अशुभ स्थान में, दुर्जनों से पूर्ण स्थान में, मक्खी मच्छड़ जहा पर अधिक हो, देह बाधा होनेपर, मन में किसी प्रकार का विकार होनेपर, नास्तिकों के वन्दनीय स्थलों पर भी योगाभ्यास का आचरण नहीं करना चाहिये। इस विषय में श्रुति भी कहती है।– "समे शुचौ शर्करा वन्हि वालुका विवर्जिते शब्द जलाशयादिभिः। मनोऽनुकूले न तु चक्षु पीड़ने गुहानि वाता श्रयणे प्रयोजयेत् ॥" (श्वे० उ० अ० २ म० १०) अर्थात्– समान पवित्र वालुका अग्नि आदि से रहित, शब्द जलाशयादि से मन के अनुकूल देश, चक्षु को पीडा पहुंचाने वाले, मक्खी मच्छरादि से रहित, गुहा निर्वात स्थान में योगाभ्यास करना चाहिये ॥४७–४९॥

सु गुप्ते सु शुभे देशे गुहायां पर्व्वतस्य च।
नद्यास्तीरे पुण्य देशे देवत यतने तथा ॥५०॥
गृहे वा सु शुभे रम्मे निर्ज्जने जन्तुर्वाजिते।
युञ्जीत योगं सततमात्मानं मत्परायणः ॥५१॥
नमस्कृत्याथ योगीद्राञ्छिष्यांश्चैव विनायकम्।
गुरुञ्चैव च मां योगी युञ्जीत सु समाहितः ॥५२॥
आसनं स्वस्तिकं बद्ध्‌वा पद्ममर्द्धं मथापि वा।
नासिकाग्रे समां दृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षणः ॥५३॥

भावार्थ–सुरक्षित सुन्दर देश में तथा पर्वत की गुहा में, नदी के तटपर, पुण्य क्षेत्र, एवं देव मन्दिर में, रमणीय घर बनाकर, निर्जन प्रदेश में, जन्तुओं से रहित स्थान में, सत्परायण होकर योग में संलग्न होना चाहिये। सर्व प्रथम योगीराजों को तथा उनके सिद्ध शिष्यों को, विनायक को, एवं श्री गुरू और मुझ को नमस्कार करके, समाहित चित्त

वृत्ति से योगाभ्यास करना चाहिये ।–स्वस्तिक, पद्मासन अथवा अर्द्धासन को बांधकर–किञ्चित् नेत्रों को बन्द करके और दृष्टि को नासिका के अग्र भागपर लगावें ।।५०–५३।।

कृत्वाथ निर्भयः शान्तस्त्यक्त्वा मायामयं जगत् ।
स्वात्मन्यवस्थितं देवं चिन्तयेत्परमेश्वरम् ।।५४।।
शिखाग्रे द्वादशाङ्गुल्ये कल्पयित्वाथ पङ्कजम् ।
धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम् ।।५५।।
ऐश्वर्य्याष्ट दलंश्वेतं परं वैराग्य कर्णिकम् ।
चिन्तयेत्परमं कोशं कर्णिकायां हिरण्मयय् ।।५६।।
सर्व्वशक्तिमयं साक्षाद्यं प्राहुर्दिव्यमव्ययम् ।
ओङ्कार वाच्यमव्यक्तं रश्मिज्वाला समाकुलम् ।।५७।।

भावार्थ–पूर्वोक्त श्लोकों में कहे हुये अर्थों के अनुसार समस्त सामग्री एकत्र करके निर्भय, शान्त, और मायामय जगत् को छोडकर आत्मा में स्थित– परमात्मा को चिन्तन द्वारा साक्षात् करें। शिखाग्रभाग में द्वादश अङ्गुल परिमाण मस्तक में कमल की कल्पना करें, जिसकी कल्पना का चिन्तन इस प्रकार से करें, "धर्मरूप मूल से वह कमल ज्ञानरूपी नाल से निकलता हुआ सुशोभित हो रहा है। अष्ट ऐश्वर्य अर्थात् आठ पत्त उसमें लगे हुये हैं, वैराग्य उसकी कर्णिका (मध्य भाग) है। उस कर्णिका में परम कोष स्वरूप हिरण्मय (स्वर्णमय) सर्व शक्ति मय, जिसे साक्षात् अव्यय दिव्य कहते है, जो ओंङ्कार का अर्थ अव्यक्त और नानाप्रकार की रश्मि ज्वाला से व्याप्त हो रहा है, उसका चिन्तन करें ।।५४–५७।।

चिन्तयेत्तत्र विमलं परं ज्योतिर्यदक्षरम् ।
तस्मिञ्ज्योतिषि विन्यस्य स्वात्मानं तदभेदतः ।।५८।।
ध्यायीत कोशमध्यस्थमीशं परमकारणम् ।
तदात्मा सर्व्व गोभूत्वा न किञ्चदपि चिन्तयेत् ।।५९।।

एतद्गुह्य तमं ज्ञानं ध्यानान्तरमथोच्यते ।
चिन्तयित्वा तु पूर्व्वोक्तं हृदये पद्ममुत्तमम् ।।६०।।

भावार्थ– उस विमल नाना प्रकार की किरणों से विभूषित पद्म ज्योति का, जो अविनाशी है, चिन्तन करें और उस ज्योति में अपने आत्मा को अभेदरूप में – विन्यास करें। इसके पश्चात् कोष के मध्य में स्थित परम कारण ईश को ध्यान योग से देखे। उसे तदात्म भाव से देखता हुआ अन्य किसी भी वस्तु का चिन्तन न करें। अब इसके बाद ध्यान के पश्चात् मैं आप सब को गुह्यतमज्ञान सुनाता हूँ। पूर्व्वोक्त प्रकार से कहे हुये भाव को अपने मन में चिन्तन करने के पश्चात् हृदय पद्म का चिन्तन आरम्भ करें, उसका क्रम इस प्रकार है।

आत्मानमथ कान्तारं तत्रानल समत्विषम् ।
मध्येवन्हि शिखाकारं पुरुषं पञ्चविंशकम् ।।६१।।
चिन्तयेत्परमात्मानं तन् मध्ये गगनं परम् ।
ओंकार बोधितं तत्त्वं शाश्वतं शिवमुच्यते ।।६२।।

भावार्थ–अपने आत्मा को बहुत बड़ा और सघन बन के स्वरूप में चिन्तन करें। उसके मध्य में अग्नि के समान कान्ति वाले अग्नि की शिखा के तरह पच्चीसवें तत्व पुरुष का चिन्तन करें। उसके मध्य में जो परमाकाश है वह ओंकार से बोधित परमात्मा स्वरूप सना-तन तत्त्व 'शिव' कहा जाता है।।६१–६२।।

अव्यक्तं प्रकृतौ लीनं परं ज्योतिरनुत्तमम् ।
तदन्तः परमं तत्त्वमात्माधारं निरञ्जनम् ।।६३।।
ध्यायीत तन्मयो नित्यमेकरूपं महेश्वरम् ।
विशोधा सर्व तत्त्वानि प्रणवेनाथवा पुनः ।।६४।।
संस्थाप्यमपि चात्मानं निर्मले परमे पदे ।
पावयित्वात्मनो देहं तेनैव ज्ञानवारिणा ।।६५।।
मदात्मा मन्मना भस्म गृहीत्वा त्वग्नि होत्रिकम् ।
तेनोद्धूलितसर्वाङ्गमग्नि रादित्य मन्त्रतः ।।६६।।

चिन्तयेत्स्वात्मनीशानं परं ज्योतिः स्वरूपिणम् ।
एष पाशुपतो योगः पशु पाश विमुक्तये ॥६७॥

भावार्थ— प्रकृति के साथ लीन भाव को प्राप्त की तरह अनुत्तम, परम ज्योतिः स्वरूप अव्यक्त के मध्य में आत्माधार, निरञ्जन स्वरूप परम तत्व को तन्मय होकर, प्रणव के द्वारा (जप से) समस्त तत्त्वों को शुद्ध कर नित्य एक रूप परमेश्वर का ध्यान करें। अथवा निर्मल परम पद में अपनी आत्मा को स्थापित करते हुये अपनी देह को ज्ञानरूपी जल से पवित्रकर मुझमें अपने स्वरूप की एकता-भावना करता हुआ मुझ में मन को लगावे, तथा अग्नि होत्र की भस्म को अग्नि या सूर्य के वैदिक मन्त्रों से अभिमंत्रित करके समस्त शरीर में लगावे। इसके–पश्चात् परम ज्योतिः स्वरूप ईशान श्री महेश्वर देव का चिन्तन करे। इसे पाशुपात योग कहते हैं। इस से पशुओं का पाश छूट जाता है, अर्थात् जीव शिव रूप हो जाता है ॥६३–६७॥

सर्व्व वेदान्त सारोयमत्याश्रममितिश्रुतिः ।
एतत्परतरं गुह्यं मत्सायुज्य प्रदायकम् ॥६८॥
द्विजातीनान्तु कथितं भक्तानां ब्रह्मचारिणाम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च क्षमाशौचन्तपोदमः ॥६९॥
सन्तोषः सत्य मास्तिक्यं व्रताङ्गानिविशेषतः ।
एकेनाप्यथ हीनेन व्रतमस्य न सिध्यति ॥७०॥

भावार्थ– यह जो रहस्य आप सब के प्रति कहा गया, वह समस्त वेदान्त का सार है। इसे श्रुति में अत्याश्रम पद से व्यवहार किया गया है। यह परम गुह्य रहस्य हमारे सायुज्य को प्रदान करने वाला है। जो हमारे भक्त ब्रह्मचर्य व्रत में निष्ठ, द्विजाति कुलोत्पन्न हैं, –उनके लिये यह मैंने सुनाया है। ब्रह्मचर्य, अहिंसा, क्षमा, शौच, तप, दम, सन्तोष, सत्य और आस्तिक्य ये व्रत के अङ्ग विशेषतः अनुष्ठान के योग्य हैं। इनमें से एक के भी न रहने से व्रत की पूर्ति नहीं होती है। इसलिये आत्म गुण से युक्त साधक को चाहिये कि व्रत को पूर्ण रूप से पूरा करने के लिये इनका पूर्णतया पालन करें ॥६८—७०॥

तस्मादात्म गुणोपेतो मद्व्रतं वोढुमर्हति ।
वीतराग भय क्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ॥७१॥
बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागताः ।
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥७२॥
ज्ञानयोगेन मां तस्माद्यजेत परमेश्वरम् ।
अथवाभक्ति योगेन वैराग्येण परेणतु ॥७३॥
चेतसा बोध युक्तेन पूजयेन्मां सदा शुचिः ।
सर्व्व कर्म्मणि संन्यस्यभिक्षाशी निष्परिग्रहः ॥७४॥

भावार्थ–राग द्वेष और भय से रहित होकर मेरे भाव में लीन, मेरे ही आश्रय में रहने वाले, बहुत से महानुभाव इस पूर्व्वोक्त योग का अनुष्ठान करके पवित्र होकर मद्भाव (मेरे सायुज्य) को प्राप्त हो गये हैं। जो जिस प्रकार से मुझे भजता है, उसे मैं भी उसी प्रकार भजता हूँ सब प्रकार से ज्ञान योग द्वारा मुझको पूजना—चाहिये। यदि आशंका हो तो भक्ति योगद्वारा एवं पर वैराग्य से ज्ञान युक्त चित्त वाला और सदा पवित्र होकर मेरी पूजा करता रहे, और समस्त कर्मों का त्याग करके भिक्षा मात्र से भोजन का व्यवहार चलावे। ऐसा पुरुष संग्रह बुद्धि का त्याग करता हुआ मेरे सायुज्य को प्राप्त हो जाता है। यह अत्यन्त गोपनीय रहस्य मैंने आप सब को सुनाया है ॥७१–७४॥

प्राप्नोति मम सायुज्यं गुह्यमेतन्मयोदितम् ।
अद्वेष्टा सर्व्व भूतानां मैत्रः करुण एव च ॥७५॥
निर्ममो निरहङ्कारो यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ॥७६॥
मर्य्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते चयः ॥७७॥
हर्षामर्ष भयोद्वेगैर्योमुक्तः सचमे प्रियः ।
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ॥७८॥

सर्व्वारम्भ परित्यागी भक्तिमान्यःस मे प्रियः ।
तुल्य निन्दा स्तुति मौनी सन्तुष्टो येनकेन चित् ।।७९।।
अनिकेतः स्थिरमतिर्मद्भक्तो मामुपैष्यति ।
सर्व्व कर्म्माण्यपि सदा कुर्व्वाणो मत्परायणः ।।८०।।

भावार्थ– समस्त प्राणियों के साथ द्वेषभाव से रहित होकर वर्ताव करनेवाला, मित्रता और दयालुता से युक्त, ममत्व रहित तथा निरहङ्कार भक्त मुझे प्रिय है। जो सन्तोष रूपी धन से तृप्त है, जो सदैव योगाभ्यास में निरत है, जिसके मन के संकल्प-विकल्प निरुद्ध हैं एवं जिसका निश्चय दृढ़ है, तथा जिसने मन और बुद्धि को मुझ में अर्पण कर दिया है, वह भक्त मुझे प्रिय है। जिससे किसी प्रकार का लोगों को भय नहीं पहुंचता, – जो सन्यासी किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाता, और जो हर्ष, असहिष्णुता, भय, उद्विग्नता आदि से मुक्त है,– वह भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है। जिसे किसी की अपेक्षा नहीं है, जो शुचिभाव वाला, चतुर, उदासीन, सर्वदा प्रसन्नता, समस्त कर्मों का त्यागी, एवं भक्ति वाला है, वह पुरुष मुझे अत्यन्त प्रिय है। निन्दा, स्तुति जिसे बरावर है, एवं जो वाणी का नियमन वाला है, जो कुछ शरीर निर्वाहार्थ समय पर उपस्थित हो जाय उसी में प्रसन्न रहने वाला, किसी नियत स्थान पर बहुतकाल तक निवास न करने वाला, स्थिर-मति जो मेरा भक्त है वह मुझे बहुत प्रिय है, और वह मुझे प्राप्त करता है। वह भी जो मुझ में तत्पर होकर सर्वदा लोक संग्रह बुद्धि से कर्मों में लगा रहता है ।।७४–८०।।

मत् प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं परमं पदम् ।
चेतसा सर्व्वं कर्म्माणिमयि संन्यस्य मत्परः ।।८१।।
निराशीर्निममोभूत्वा मामेकं शरणं व्रजेत् ।
त्यक्त्वा कर्म फलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।।८२।।
कर्मण्यपि प्रवृत्तोऽपि कर्मणा नैव बध्यते ।
निराशी यत चित्तात्मा त्यक्त सर्वं परिग्रहः ।।८३।।

भावार्थ– वह भी हमारी प्रसन्नता से शाश्वत पद को प्राप्त होता है, जो चित्त से समस्त कर्मों को त्याग कर अथवा मुझमें न्यास करके मत्परायण होता हुआ और आशा एवं ममत्व रहित होकर एकमात्र मेरी शरण में आता है वह समस्त कर्मफलों को छोड़कर निराश्रय एवं नित्य तृप्त होकर कर्म में प्रवृत्ति करता-- हुआ भी, कर्म से बन्ध को प्राप्त नहीं होता। संसारिक समस्त भोगों की आशाओं से रहित मन के संकल्पादिकों को जिसने अच्छी रीति से निरोध कर लिया है, वह पुरुष केवल शारीरिक कर्म करता हुआ किञ्चित् भी दोष का भागी नहीं होता, क्योंकि वह समस्त परिग्रहों का त्यागी है ॥८१–८३॥

शारीरं केवलं कर्म्म कुर्व्वन्नाप्नोति किल्विषम्।
यदृच्छालाभतृप्तस्य द्वन्द्वातीतस्य चैव हि ॥८४॥
कुर्व्वतो मत्प्रसादार्थं कर्म संसार नाशनम्।
मन्मनामन्नमस्कारो मद्याजी मत्परायणः ॥८५॥
मामुपास्यति योगीशो ज्ञातामां परमेश्वरम्।
मामेवाहुः परं ज्योति बोधयन्तः परस्परम् ॥८६॥
कथयन्तश्च मां नित्यं मम सायुज्य माप्नुयुः।
एवं नित्याभियुक्तानां मायेयं कर्म सत्वगम् ॥८७॥

भावार्थ– जो कुछ ईश्वर की इच्छा से प्राप्त हो, उसी में तृप्त रहने वाला, और सुख-दुख, शीतोष्ण, भूख-प्यास आदि द्वन्द्वों से रहित जो महापुरुष हैं वह मेरी प्रसन्नता के लिये कर्म करता हुआ भी उससे परे हैं; उसका कर्म संसार को विनाश–करने वाला है, अर्थात् मोक्ष के लिये उसका आरम्भ है। मुझमें जिसका मन सर्वदा रमण करता है। जो मुझ को नमस्कार करता है, मेरा पूजन करता है, और मुझ में ही सर्वदा संलग्न रहता हैं, ऐसे लक्षण वाला योगीश्वर मुझे ही परमेश्वर जानकर सर्वदा मेरी उपासना करता हैं। परस्पर बोध प्रदान करते समय ऐसे महात्मा मुझे ही परम ज्योति बतलाते हैं। नित्य-प्रति

मेरा कथन करते-करते अन्त समय में सायुज्य दशा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार जो सर्वदा मुझ में लीन-रहते हैं, उन पुरुषों के समस्त माया बन्धनों को मैं निवृत्त करता हुआ, उनके हृदय में रहे हुयें अज्ञानान्धकार को प्रकाशमान ज्ञानदीपक से नाश कर देता हूं ॥८४–८७॥

नाशयामितमः कृत्स्नं ज्ञान दीपेन भास्वता।
मद्बुद्धयो मां सततं पूजयन्तीह ये जनाः ॥८८॥
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।
ये चान्येभोग कर्मार्थी यजन्ते ह्यन्यदेवताः ॥८९॥
तेषां तदन्तं विज्ञेयं देवतानुगतं फलम्।
ये चान्ये देवताभक्ताः पूजयन्तीह देवताः ॥९०॥
मद्भावनासमायुक्ता मुच्यन्ते तेऽपि मानवाः।
तस्माद्विनश्वरानन्यांस्त्यक्त्वा देवानशेषतः ॥९१॥
मामेव संश्रयेदीशं स याति परमं पदम।
त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निःशोकोनिष्परिग्रहः ॥९२॥

भावार्थ– जो जन मुझ में अपनी बुद्धि वृत्तियों को लगाकर सदैव मेरी ही पूजा किया करते हैं और नित्य प्रति मेरे चिन्तन में संलग्न रहते हैं, उनके हर प्रकार के योग क्षेम को मैं पूरा करता हूँ। जो कोई मुझ को छोड़ नाना प्रकार की कामनाओं में चित्त को लगाकर अन्य कल्पित देवों की पूजा करते हैं, उनको जो फल उन देवताओं के पूजने से मिलता है, वह विनाशी है क्योंकि मुझ को छोड़कर जितने देवता हैं वे सब नाशवान् हैं और जो कोई उन अन्य देवताओं को मेरी ही भावना से पूजते हैं, वे क्रम से मुक्ति के भागी होते हैं। इसलिए विनाशी समस्त देवों को छोड़कर तथा पुत्रादि में स्नेह को त्यागकर निःशोक निष्परिग्रह भाव का आश्रय करके एक समस्त जगत् के स्वामी मुझ ईश्वर को जो अपने आश्रय रूप से भजते हैं, वे परम पद के सुख के भागी होते हैं, क्योंकि अन्य देवताओं की भक्ति से जो सुख मिलता है वह भी विनाशी है। मैं

नित्य; शुद्ध बुद्ध और मुक्त हूँ; इसलिये मुझ से जो सुख मिलता है, वह नित्य हैं ॥८८–९२॥

यजेच्चामरणाल्लिङ्गं विरक्तः पारमेश्वरम् ।
येऽर्च्चयन्ति सदा लिगं त्यक्त्वाभोगानशेषतः ॥९३॥
एकेन जन्मना तेषां ददामि परमम्पदम् ।
परात्मनः सदालिंगं केवलं रजतप्रभम् ॥९४॥
ज्ञानात्मकं सर्वगतं योगिनां हृदि संस्थितम् ।
ये चान्ये नियता भक्ता भावयित्वा विधानतः ॥९५॥
यत्र क्वचन तल्लिगमर्च्चयन्ति महेश्वरम् ।
जले वा वह्नि मध्येवा व्योम्नि सूर्येऽप्यथा न्यतः ॥९६॥

भावार्थ– अथवा मरण पर्यन्त विरक्त होकर परमेश्वर के लिंग का पूजन करना चाहियें । जो समस्त भोगों से विरक्त होकर सर्वदा शिवलिंग के पूजन में निरत रहते हैं, उन्हें एक ही जन्म में मैं परम पद प्रदान कर देता हूं । योगियों के हृदय में मुझ परमातमा का रजत (चाँदी) के समान प्रभा वाला, ज्ञानात्मक, सर्वगत लिंग सर्वदा भासित रहता हैं, और जो नियत भक्ति वाले भक्त हैं, वे विधि विधान से युक्त किसी भी स्थान में लिंग की भावना करके श्री महेश्वर को पूजते हैं । भावना करने के प्रकार इस तरह से माने जाते हैं ।– जल में, अग्नि में, आकाश में सूर्य में अथवा किसी भी अभिमत स्थान में भावना करना श्रेष्ठ माना जाता है ॥९३–९६॥

रत्नादौ भावयित्वेश मर्च्चयेल्लिगमैश्वरम् ।
सर्व्वलिंगमयं ह्येतत्सर्वलिंगे प्रतिष्ठतम् ॥९७॥
तस्माल्लिगेऽर्च्चयेदीशं यत्र क्वचन शाश्वतम् ।
अग्नौक्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणाम् ॥९८॥
काष्ठादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिंगन्तु योगिनाम् ।
यद्यनुत्पन्न विज्ञानो विरक्तः प्रीतिसंयुतः ॥९९॥
यावज्जीवं जपेद्युक्तः, प्रणवं ब्रह्मणो वपुः ।
अथवा शतरुद्रीयं जपेदामरणाद्द्विजः ॥१००॥

भावार्थ– अथवा रत्नादि में मुझ ईश्वर की भावना करके ऐश्वर लिंग की पूजा करनी चाहिये । यह लिंग सर्व मय है, सर्व वस्तुयें लिंग में ही प्रतिष्ठित हैं । इसीलिए किसी अवस्था में मुझ ईश्वर के लिंग कि पूजा करना परमावश्यक है । कर्म काण्डी लोग अग्नि और जल में लिंग भावना से पूजते हैं । विद्वान् लोग सूर्य तथा आकाश में, मूर्ख लोग काष्ठ, पाषाण आदि में, परन्तु योगी लोग हृदय में ध्यान करते हैं । यदि इस प्रकार से ज्ञान उत्पन्न न हो, तो विरक्त प्रीति पूर्वक जबतक जीता रहे तवतक ब्रह्म का वाचक ॐ कार का जप करता रहे, अथवा मरण पर्यन्त शतरूद्रीय का जप करता रहे ।।९७–१००।।

एकाकी यतचित्तात्मा स याति परमं पदम् ।
वसेच्चामरणाद्विप्रा वाराणस्यां समाहितः ।।१०१।।
सोऽपीश्वर प्रसादेन याति तत्परमम्पदम् ।
तत्रोत्क्रमण कालेहि सर्वेषामेव देहिनाम् ।।१०२।।
ददाति परमं ज्ञानं येन मुच्येत बन्धनात् ।
वर्णाश्रम विधिं कृत्स्नं कुर्वाणो मत्परायणः ।।१०३।।
तेनैव जन्मना ज्ञानं लब्ध्वा याति शिवम्पदम् ।
येऽपि तत्र वसन्तीह नीचावै पाप योनयः ।।१०४।।
सर्वे तरन्ति संसारमीश्वरानुग्रहाद् द्विजाः ।
किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहत चेतसाम् ।।१०५।।
धर्म्मात् समाश्रयेत्तस्मान्मुक्तये सततं द्विजाः ।
एतद्रहस्यं वेदानां न देयं यस्य कस्य चित् ।।१०६।।

भावार्थ–अकेला विचरने वाला एवं मन को नियमन करने वाला यति परम पद को प्राप्त करता है । अथवा मरण पर्यन्त हे ब्राह्मणो ? समाहित वृत्ति से काशी में निवास करने वाला भी मुझ ईश्वर की प्रसन्नता से परमपद पाता है । काशी में मरने के समय समस्त प्राणियों को श्रीभगवान् काशी पति विशेश्वर परम ज्ञान (जीव ब्रह्मयैक्य) प्रदान

करते हैं, जिससे सिद्धि होती है, क्योंकि तार नाम ॐकार का हैं। इस ॐकार के उपदेश से वह जीव अमृत भाव को प्राप्त कर मोक्ष पदवी पर, आरुढ होता है। इसलिये इस अविमुक्त क्षेत्र काशी का सेवन करना सब प्रकार से श्रेयस्कर है। अतःहे याज्ञावल्क्य ? अविमुक्त का कभी त्याग न करे। यह रहस्य इसी प्रकार का है। अतएव हे वैदिक मुनियों ? यह वैदिक रहस्य जो मैंने आप सब ऋषियों को उपदेश किया हैं किसी अनअधिकारी पुरुष को कभी प्रदान नहीं करना। इसके अधिकारी धार्मिक, भक्त, ब्रह्मचारी ही हैं; उन्ही को देने से यह सफलीभूत होता है ॥१०१–१०६॥

धार्म्मिका यैव दातव्यं भक्ताय ब्रह्मचरिणे।
इत्येतदुत्तवा भगवान् शाश्वतो योगमुत्तमम् ॥१०७॥
व्याजहार समासीनं नारायणमनामयम्।
मयैतद्भाषितं ज्ञानं हितार्थं ब्रह्मवादिनाम् ॥१०८॥
दातव्यं शान्तचित्तेभ्यः शिष्येभ्यो भवता शिवम्।
उक्त्वैवमर्थं योगीन्द्रा न ब्रवीद्भगवानजः ॥१०९॥

भावार्थ– पूर्वोक्त समस्त ज्ञान ऋषियों को सुनाकर श्रीभगवान व्यास देव जी बोलेः– हे ऋषियों ? सनत्कुमार आदि ऋषियों को सनातन, अव्यय श्रीभगवान शंकर जी उत्तम योग सुना चुकने पर समीप में जीव संसार बन्धनों से छूट जाते हैं। जो प्राणी अपने अपने वर्ण आश्रम, धर्मों का अनुष्ठान करते हुये मुझ में परायण रहते हैं, वे उसी जन्म में ज्ञान प्राप्त कर शिव पद को प्राप्त हो जाते हैं। हे ब्राह्मणो ! जो कोई नीच वर्णोत्पन्न, तथा पाप योनियों में उत्पन्न पशु पक्षी आदि वहां पर (काशी में) निवास करते हैं, वे भी मरण काल में मुझ ईश्वर के अनुग्रह से संसार सागर से तर जाते हैं। किन्तु वहां निवास करने में पापी जीवों के लिये बहुत विघ्न होता है, इसलिये हे ऋषियों ? सदैव मुक्ति के लिये धर्म्म का आश्रय करता रहे। काशी के मुक्ति विषय में उपनिषद् की भी साक्षी हैः– 'अत्रहि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्ता-

रकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवति तस्मादविमुक्त-मेव निषे वेत अविमुक्तं न विमुश्चेदेव मे वैतद्याज्ञवल्क्य ॥" (जाबालोपनिषद) मं० १॥ अर्थ–काशी में जीव जब मरने लगता है, तब भगवान शंकर तारक अर्थात् ॐ कार ब्रह्म का उपदेश करते हैं, क्योंकि यही सब मन्त्रों में श्रेष्ठ और मुक्ति का देने वाला है। कोई कोई मतवाले भिन्न नामों की कल्पना में तारक शब्द की व्युत्पत्ति करते हैं, परन्तु वह गौण है। उपनिषद के मत से तारक ॐ कार का ही नाम है। प्रत्युत, 'तार एव तारकः, इस व्युत्पत्ति से ॐ कार ही विराजमान दिव्य स्वरूपवाले श्रीनारायण से बोले कि मैंने यह ज्ञान ब्रह्म वादियों के हितार्थ सुनाया है, इसलिये इसे शांत चित्तवाले शिष्यों को ही प्रदान करियेगा। इस प्रकार समस्त योगीन्द्रों के प्रति उपर्युक्त निर्देश करते हुये श्रीभगवान शंकर जी ने निम्नोक्त विषय को समझाते हुये कहा ॥१०७—१०९॥

हिताय सर्व्वभक्तानां द्विजातीनां द्विजोत्तमाः।
भवन्तोऽपि हि मज्ज्ञानं शिष्याणां विधि पूर्वकम् ॥११०॥

उपदेक्ष्यन्तिभक्तानां सर्व्वेषां वचनान्मम।
अयं नारायणो योऽसावीश्वरो नात्र संशयः ॥१११॥

नान्तरं ये प्रपश्यन्ति तेषां देयमिदम्परम्।
ममैषा परमा मूर्तिर्न्नारायणसमाचया ॥११२॥

भावार्थ– हे द्विजोत्तम मुनिगण ? आप सब भी मेरे कहे हुये इस ज्ञान को समस्त भक्तों के लिये तथा द्विजातियों के अर्थ, जो यथार्थ रूप में शिष्टा भाव रखते हों, विधि पूर्वक मेरे बचनों से उपदेश कीजियेगा। हमारे समीप ये जो नारायण विद्यमान है, ये ईश्वर ही हैं, इस में कुछ भी सन्देह नहीं। जो मेरे और श्रीनारायण के विषय में भेद बुद्धि नहीं रखते उन्हें ही यह ज्ञान आप सब सुनाना, क्योंकि यह मेरी नारायण नाम वाली परम उत्कृष्ट मूर्ति है ॥११०–११२॥

सर्व्व भूतात्मभूतस्था शान्ता चाक्षर संस्थिता ।
येऽन्यथा मां प्रपश्यन्ति लोके भेददृशो जनाः ॥११३॥
न ते मुक्ति प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुनः पुनः ।
येत्वेनं विष्णुमव्यक्तं माञ्च देवं महेश्वरम् ॥११४॥
एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः ।
तस्मादनादि निधनं विष्णुमात्मानमव्ययम् ॥११५॥
मामेव सम्प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैवच ।
येऽन्यथा सम्प्रपश्यन्ति सत्वैवन् देवतान्तरम् ॥११६॥

भावार्थ– समस्त भूतों में आत्मा रूप से शान्त,– अक्षर भाववाली यह श्री विष्णु की मूर्ति हैं, जो लोक में भेदवादी लोग हैं, जो मुझ में और श्री विष्णु में भेद मानते हैं, वे कभी भी मुक्ति नहीं पाते। प्रत्युत सदैव जन्म-मरण के चक्कर में पडे रहते हैं। इस से भिन्न जो मुझ में और श्री विष्णु में अभेदभाव का अवलोकन करते हैं, उनका पुर्नजन्म नहीं होता। वे सदा के लिये संसार बन्धन से छूट जाते हैं। इसलिये आदि-अन्त-रहित, मेरा आत्म स्वरूप जो श्री विष्णु का स्वरूप है, उसे मुझे ही समझो, और उसकी पूजा करो। जो कोई इस रहस्य के विपरीत समझते हैं – अर्थात्–जो मुझको और श्री विष्णु को देवान्तर समझते हैं; वे घोर नरक में जाते हैं। उनके अन्दर मैं व्यवस्थापक रूप से नहीं रहता ॥११३–११६॥

ते यान्ति नरकान् घोरान्नाहन्तेषु व्यवस्थितः ।
मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम् ॥११७॥
मोचयामि श्वपाकं वा न नारायण निन्दकम् ।
तस्मादेष महायोगी मद्भक्तैः पुरुषोत्तमः ॥११८॥
अर्च्चनीयो नमस्कार्य्यो मत्प्रीति जननाय वै ।
एवमुक्त्वा वासुदेवमालिंग्य स पिनाकधृक् ॥११९॥

भावार्थ— मेरा आश्रय प्राप्त करने वाला मूर्ख हो या पण्डित, ब्राह्मण हो या चाण्डाल, मैं उसे संसार बन्धन से छुड़ा देता हूँ, परन्तु श्री विष्णु की निन्दा करने वाला भी हो, मैं उसे कभी मुक्ति नहीं देता। इसलिये मेरे भक्तों को चाहिये कि वे महायोगी पुरुषोत्तम श्री विष्णु को मेरी प्रसन्नता के लिये पूजा नमस्कार आदि करते रहें, क्योंकि मेरी भक्ति विना श्री विष्णु की भक्ति के नहीं मिल सकती। इस लिये इस नियम का पालन सबको परम आवश्यक है। यह कहकर श्री शंकर वासुदेव को अलिंगन करके सब के देखते देखते अन्तर्धान हो गये ॥११७–११९॥

अन्तर्हितोऽभवत्तेषां सर्वेषामेव पश्यताम्।
नारायणोऽपि भगवांस्तापसं वेषमुत्तमम् ॥१२०॥
जग्राह योगिनः सर्वास्त्यक्त्वावै परमं वपुः।
ज्ञानंभवद्भिरमलं प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥१२१॥
साक्षाद्देव महेशस्य ज्ञानं संसारनाशनम्।
गच्छध्वं विज्वरा सर्वे विज्ञानं परमेष्ठिनः ॥१२२॥

भावार्थ— श्री भगवान नारायण ने भी अपने सुन्दर तापस वेष को ग्रहण कर लिया, और अपने दिव्य स्वरूप वाले शरीर को छोड़ दिया। फिर इसके बाद समस्त ऋषियों से बोले— हे मुनियो! आप सब को ईश्वर के प्रसाद से जो विचित्र ज्ञान प्राप्त हुआ है, यह परम लाभ समझना चाहिये, क्योंकि देवाधिदेव श्री महेश्वर का ज्ञान समस्त संसार के बन्धनों का विनाशक है— अर्थात्, मुक्ति प्रद है। अतः हे ऋषियो! समस्त सांसारिक तापों से रहित होकर श्री भगवान कैलासपति के परम विज्ञान को धार्मिक शिष्यों द्वारा आप सब संसार में प्रवृत्त करें ॥१२०–१२२॥

प्रवर्तयध्वं शिष्येभ्यो धार्मिकेभ्यो मुनीश्वरा।
इदं भक्ताय शान्ताय धार्मिकायाहिताग्नये ॥१२३॥

विज्ञानमैश्वरं देयं ब्राह्मणाय विशेषतः।
एव मुक्त्वा स विश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः ॥१२४॥
नारायणो महायोगी जगामादर्शन स्वयम्।
ऋषयस्तेऽपि देवेशं नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥१२५॥

भावार्थ–यह श्री शंकर जी का विज्ञान शान्त भक्त, धार्मिक और अग्नि होत्री विशेषतः ब्राह्मणों के ही लिये आप सब प्रदान करना। इस प्रकार मुनियों को उपदेश देकर विश्वात्मा योगियों में परम योग वेत्ता महायोगीश्वर नारायण स्वयं अदृश्य हो गये। ऋषियों ने भी महेश्वर एवं श्री नारायण को नमस्कार करके अपने २ स्थानों के लिये प्रस्थान किया ॥१२३–१२५॥

अब इस गीता शास्त्र की परम्परागत सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक महर्षियों की नाम गणना का उल्लेख करते हुये तथा संक्षेप में कर्मयोग का उपदेश देकर इस शास्त्र को समाप्त करते हैं।

नारायणञ्चभूतादि स्वानि स्थानानिलेभिरे।
सनत्कुमारो भगवान् संवर्त्ताय महामुनि ॥१२६॥
दत्तवानैश्वरं ज्ञानं सोऽपि सत्य व्रतायतु।
सनन्दनोऽपि योगीन्द्रः पुलहाय महर्षये ॥१२७॥
प्रददौ गौतमायाथ पुलहोऽपि प्रजापतिः।
अङ्गिरावेद विदुषे भरद्वाजाय दत्तवान् ॥१२८॥
जैगीषव्याय कपिलस्तथा पञ्च शिखाय च।
पराशरोऽपि सनकात्पिता मे सर्व्वतत्त्वदृक् ॥१२९॥
लेभे तत्परमं ज्ञानं तस्माद्वाल्मीकिरात्पवान्।
ममोवाच पुरादेवः सतीदेहभवाङ्गजः ॥१३०॥

भावार्थ–पहले यह शास्त्र श्री शंकर जी से प्राप्त कर भगवान् सनत्कुमार ने संवर्त्त नामक मुनि को उपदेश दिया, योगीन्द्र सनन्दन ने पुलह महर्षि को सुनाया,– पुलह प्रजापति ने गौतम को श्रवण कराया और वेद विद्या के विद्वान् अङ्गिरा ऋषि एवं भारद्वाज को भी–श्रवण

कराया। भगवान् कपिल देव ने इसे जैगीषव्य एवं पंच शिखाचार्य्य को दिया। श्री व्यास जी कहते हैं कि सनक ऋषि से हमारे पिता पराशर जी को, जो समस्त विषयों के पूर्ण ज्ञाता है; यह परम ज्ञान मिला। और उनसे यह वाल्मीकि ऋषि को प्राप्त हुआ। पुरातन काल में सती (पार्वती) और श्री महादेव जी के अंग से अविभूत, महायोगी, पिनाक पाणि श्री वामदेव रुद्र ने मुझे यह सुनाया ।।१२६–१३०।।

वामदेवो महायोगी रुद्रः किल पिनाकधृक् ।
नारायणोऽपि भगवान्देवकी तनयोहरि ।।१३१।।
अर्जुनाय स्वयं साक्षाद्दत्तवानिदमुत्तमम् ।
यदाहं लब्धवान्रुद्रा द्वामदेवादनुत्तमम् ।।१३२।।
विशेषाद्गिरिशे भक्तिस्तस्मादारभ्य मेऽभवत् ।
शरण्यं गिरिशं रुद्रं प्रपन्नोऽहं विशेषतः ।।१३३।।
भूतेशं गिरिशं स्थाणुं देवदेवं त्रिशूलिनम् ।
भवन्तोऽपि हितं देवं शम्भुं गोवृषवाहनम् ।।१३४।।
प्रपद्यन्तां सपत्नीकाः सपुत्राः शरणं शिवम् ।
वर्त्तध्वंतत्प्रसादेन कर्म्म योगेन शंकरम् ।।१३५।।

भावार्थ— श्रीनारायण भगवान् देवकीपुत्र श्रीकृष्ण जी ने इस उत्तम ज्ञान को महाभारत में कर्तव्यविमूढ हुए अर्जुन को सुनाया। जब से मैंने श्री भगवान् रुद्र स्वरूप श्री वामदेव से यह अपूर्व गीताशास्त्र का रहस्य सुना है, तब से विशेष रूप से श्री कैलाशपति भगवान् महेश्वर के चरणों में मेरी प्रीति होगई है, और तभी से मैं भक्तों की रक्षा करने वाले श्रीगिरीश की सर्वतोभावेन शरम में आया हूँ। इसलिये आप सभी पुत्र पत्नी आदि समस्त वस्तुओं के सहित समस्त जगत् के स्वामी स्थाणुवत् निश्चल एवं एक रस देवताओं के भी देव, हाथ में त्रिशूल धारण किये हुये शम्भु, वृषवाहन वाले, शिवजी की शरण में आवें और उनकी प्रसन्नता से समस्त व्यवहारों की निष्पत्ति करें, तथा कर्मयोग

द्वारा श्रीशंकर, महादेव गोपति, सर्प से भूषित स्वामी की पूजा करें ॥१३१-१३५॥

पूज्यध्वं महादेवं गोपतिं व्यालभूषणम् ।
एव मुक्ते पुनस्ते तुशौनकाद्या महेश्वरम् ॥१३६॥
प्रणेमुः शाश्वतं स्थाणुं व्यासं सत्यवती सुतम् ।
अब्रुवन् हृष्टमनसः कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥१३७॥
साक्षादेवं हृषीकेशं शिवं लोकमहेश्वरम् ।
भवत्प्रसादादचला शरण्ये गोवृषध्वजे ॥१३८॥
इदानीं जायते भक्तिर्या देवैरपि दुर्लभा ।
कथयस्व मुनिश्रेष्ठ कर्म्मयोगमनुत्तमम् ॥१३९॥

भावार्थ- ऐसा कहने पर फिर से शौनकादि महर्षियों ने श्री महेश्वर देव को प्रणाम किया,- और प्रसन्न चित्त से सत्यवती पुत्र भगवान् कृष्णद्वैपायन से बोले कि आप साक्षात् भगवान् वासुदेव एवं लोक के स्वामी, महेश्वर स्वरूप हैं; आपके ही प्रसाद से भक्तों के शरण श्री शंकर जी में हम लोगों की अचल भक्ति उत्पन्न हुई है, जो देवों के लिये भी दुर्लभ है। इसलिये हे मुनि श्रेष्ठ ! कर्म योग का रहस्य हम लोगों के प्रति आप फिर से सुनाइये ॥१३६-१३९॥

ये नासौ भगवानीशः समाराध्यो मुमुक्षुभिः ।
त्वत्सन्निधावेव सूतः श्रुणोतुभगवद्वचः ॥१४०॥
तद्वच्चाखिल लोकानां रक्षणं धर्म्म संग्रहम् ।
यदुक्तं देवदेवेन विष्णुनाकूर्म्मरूपिणा ॥१४१॥
पृष्टेन मुनिभिः सर्व्वं शक्रेणामृत मन्थने ।
श्रुत्वा सत्यवती सूनुः कर्म्मयोगं सनातनम् ॥१४२॥

भावार्थ- जिस ज्ञान से भगवान ईश मुमुक्षुओं द्वारा आराधित हैं, वह आपके समीप बैठे हुये श्री सूत जी भी आप के वचनों को सुनें। वह जिस ज्ञान को कूर्मावतार धारी श्री विष्णु ने अखिल संसार के जनों के रक्षण, और धर्म रक्षा करते समय, समुद्र मंथन काल में समस्त मुनियों एवं इन्द्र के पूछने पर कहा था। मुनियों के इस प्रश्न को सुनकर

श्री भगवान् व्यास देव ने समाहित चित्तसे वही कर्म्मयोग का रहस्य उनको यथाविधि श्रवण करा दिया ॥१४०–१४२॥

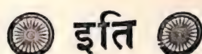
मुनीनां भाषितं कृत्स्नंप्रोवाच सुसमाहितः ।
य इमं पठते नित्यं संवादं कृतिवाससः ।
सनत्कुमारप्रमुखैः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥१४३॥
श्रावयेद्वा द्विजान् शुद्धान् ब्रह्मचर्य्यपरायणान् ।
यो वा विचारयेदर्थं स याति परमाङ्गतिम् ॥१४४॥

भावार्थ– जो श्री शंकर जी और सनत्कुमारादि मुनियों से कहे हुये इस उत्तम सम्वाद को पढ़ता हैं, वह पुरुष सब प्रकार के पापों से छूट जाता है । जो कोई इस तत्त्व रहस्य को शुद्ध ब्रह्मचर्य्य में परायण ब्राह्मणों को सुनाता है, अथवा इसके अर्थ पर विचार करता है, वह परम गति को पाता है ॥१४३–१४४॥

यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं भक्तियुक्तो दृढव्रतः ॥१४५॥
सर्व्वपाप विनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।
तस्मात्सर्व्व-प्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः ॥१४६॥
श्रोतव्यश्चानुमन्तव्यो विशेषाद्ब्राह्मणैः सदा ॥१४७॥

भावार्थ– जो कोई दृढ़व्रत वाला पुरुष भक्ति युक्त होकर इसे सुनेगा, वह समस्त पापों से रहित होकर, ब्रह्मलोक में पूजित होगा । इसलिये विद्वानों को चाहिये कि सर्वोपायेन इसका पाठ करें । विशेषतः ब्राह्मणों को चाहिये कि वे इसका श्रवण और इस पर युक्तिपूर्वक-विचार करते रहे ॥१४५–१४७॥

इति श्री कूर्म्म पुराणे उ० श्री मदीश्वर गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे भावार्थ दीपिकाख्यव्याख्या विभूषिते ऋषि व्यास सम्बादे एकादशोऽध्याय ॥११॥




राष्ट्रगुरु १००८ श्री स्वामी जी महाराज द्वारा रचित एवं श्रीपीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद् दतिया द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ

१. श्रीबगलामुखी रहस्यम्	(संस्कृत)	१८–००
२. पञ्चोपनिषद प्रकाश भाष्य	(अंग्रेजी)	४–५०
३. प्रश्नोपनिषद प्रकाश–भाष्य	(संस्कृत)	४–५०
४. प्रश्नोपनिषद	,,	१–००
५. आनन्द–लहरी	,,	७–००
६. नारदीय शिक्षा	,,	१–००
७. महात्रिपुरसुन्दरी पूजा पद्धति	,,	५–००
८. कामकला विलासः	,,	५–००
९. महाविद्याचतुष्टयम्	,,	८–००
१०. रेणुका–तंत्रम्	,,	६–००
११. शरभ–तंत्रम्	,,	५–००
१२. श्रीविद्यारत्नसूत्रम्	,,	३–००
१३. पञ्चस्तवी	,,	०–५०
१४. तांत्रिक–पञ्चांग		७–००
१५. घेरण्ड–संहिता	(भाषानुवाद)	५–००
१६. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्		२–००
१७. ईश्वर–गीता		४–००
१८. वैदिक–उपदेश	(हिन्दी)	५–००
१९. ,, ,,	(अंग्रेजी)	१५–००
२०. अथर्ववेदीय ज्योतिषम	(हिन्दी)	१–००
२१. पुरश्चरण पद्धतिः	(हिन्दी)	२–५०
२२. वेदान्त–प्रबोधः	(सानुवाद)	२–००
२३. लेख–संग्रह	(हिन्दी)	८–००
२४. सिद्धान्त–रहस्य	(हिन्दी)	३–००
२५. सौंदर्य लहरी	(पद्यानुवाद)	१–००

२६. परश्चरणम्	(पद्य में)	१–००
२७. त्रिपुर महिम्न स्तोत्रम्	(भाषानुवाद)	३–००
२८. चिद्–विलासः	(संस्कृत,) (हिन्दी)	१–५०
	(अंग्रेजी)	३–००
	(सजिल्द)	७–००
२९. सप्तविंशति रहस्यम्	(संस्कृत)	७–००
३०. वातुलनाथ सूत्र भाषानुवाद		२–००
३१. शिवसूत्रं–भक्तिसूत्रञ्च		१–००
३२. शिवसूत्रं स्पंदकारिका		१–५०
३३. मातृका चक्र विवेक		१५–००
३४. स्वरोदय–विज्ञान	(हिन्दी)	३–००
३५. योग–विज्ञान भाग प्रथम	(हिन्दी)	४–००
३६. योग–विज्ञान भाग द्वितीय	(हिन्दी)	४–००
३७. योग–दर्शन	(संस्कृत)	२–५०
३८. दर्शन शास्त्र संग्रह	(हिन्दी)	५–००
३९. छिन्नमस्तानित्यार्चन	(संस्कृत)	६–००
४०. ताराकर्पूरराजस्तोत्रम्	,,	१–५०
४१. केनोपनिषत्		२–००
४२. ईशावास्योपनिषत्		३–५०
४३. शाक्त सौरभ		७–००
४४. माण्डूक्य उपनिषद्		१–७५
४५. पराप्रवेशिका		०–७५
४६. कठोपनिषद्		४–५०
४७. ललिता सहस्रनाम		१–५०
४८. सुभगोदय		—


श्री पीताम्बरा पीठ
ह्लीं
दतिया (म.प्र.)